पंचतंत्र

की नीति कथाएँ

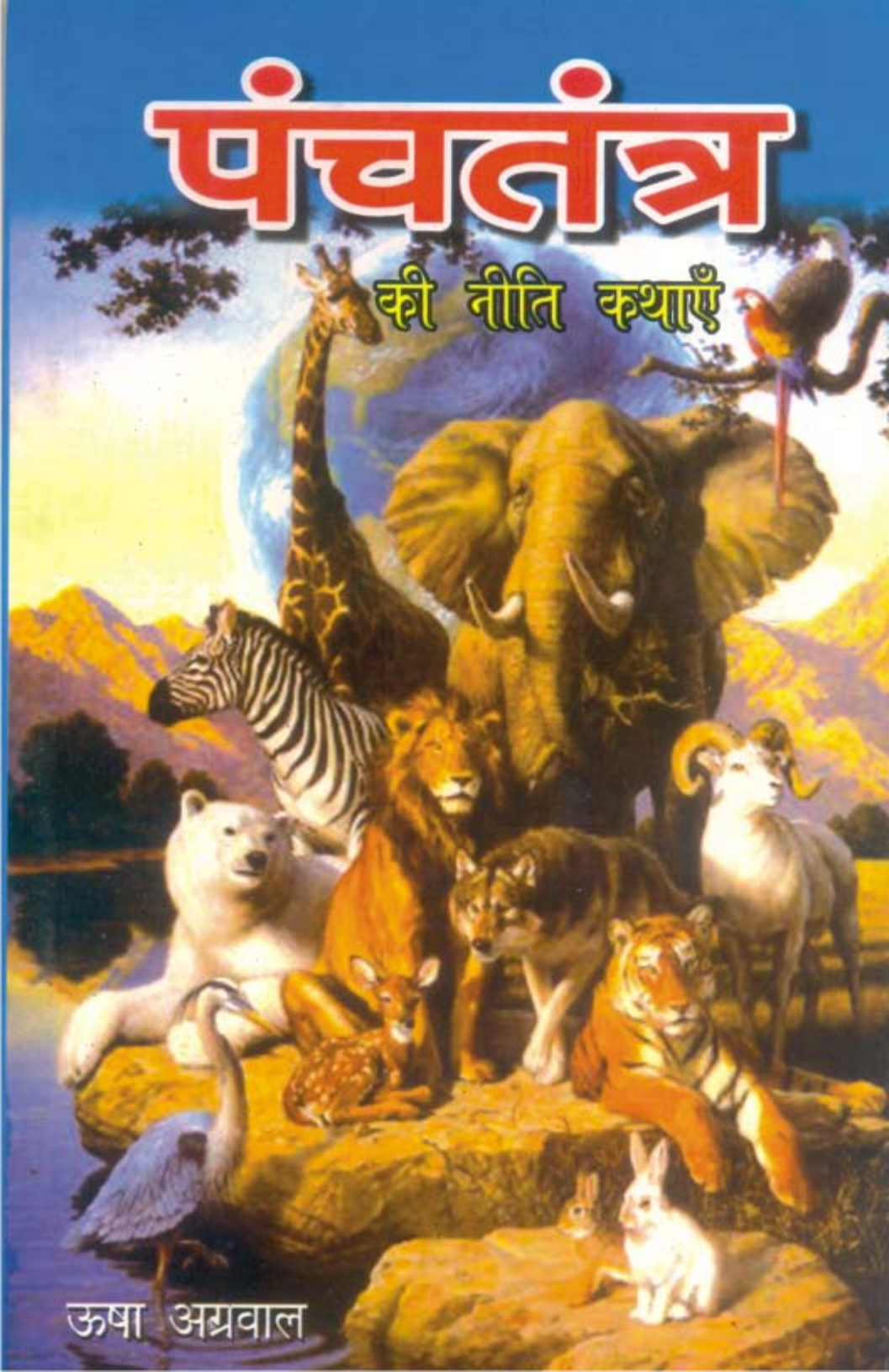

ऊषा अग्रवाल

पञ्चतन्त्र

डॉ. ऊषा अग्रवाल

सुलतान चन्द द्रौपदी देवी एजूकेशन फाउन्डेशन
नई दिल्ली

मूल्य : **50/-**

ISBN : 978-81-8054-743-0

प्रकाशक :
सुलतान चन्द द्रौपदी देवी एजूकेशन फाउन्डेशन
23, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

वितरक :
सुलतान चन्द एंड संस
23, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 23243183, 23247051, 23266105, 23277843, 23281876
फैक्स : 011-23266357

मुद्रक : न्यू ए. एस. ऑफसैट, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

प्राक्कथन

संस्कृत साहित्य ज्ञान का अक्षय भण्डार है, विशेषतः व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण के लिए। मनुष्य की मूलभूत प्रकृति-प्रवृत्ति पशु जैसी है केवल ज्ञान एवं धर्म बोध ही उसे सुसंस्कृत करता है।

पञ्चतन्त्र की नैतिक कथाएँ मनोरंजन के साथ मानसिक उद्‌बोध हेतु प्रस्तुत की जा रही हैं। सम्भवतः छोटों-बड़ों सभी को समान रुपेण रुचिकर लगेंगी। साहित्य अध्ययन चिरकालिक मानसिक परितोष को प्रदान करता है साथ ही ज्ञान-अनुभव-व्यवहार भी देता-सिखाता है बड़े बुतुर्गों की सीख की भांति।

साहित्य रुपी वृक्ष तो फल-फलों से युक्त होने से आनन्द व सुख तो देता ही है साथ ही श्रम-क्लेश को भी हरता है अपनी छाया से। 'शुभाः सन्तु ते पन्थानः' की मनोकामना से इति श्री।

डॉ. ऊषा अग्रवाल

अनुक्रमणिका

१. वर्तमान में पञ्चतन्त्र की उपादेयता १

२. वित्तैषणा ५

३. कामैषणा ९

४. मुमुक्षा ११

५. पञ्चतन्त्र की विषयवस्तु १३

६. अव्यापारे व्यापारः
अपनी योग्यता से परे कार्य करने के दुष्परिणाम १५

७. शब्दमात्रेण न भेतव्यम्
गीदड व नगाड़े की कथा १६

८. उपायेन यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः
काकी कृष्ण.सर्प कथा १८

९. उपायज्ञोऽपि न शूरैः परिभूयते
बगुले पर केंकड़े की विजय कथा १९

१०. यस्य बुद्धिर्बलं तस्य
शेर एवं शशक कथा २२

११. न स्वभावेऽत्र मर्त्यानां शक्यते कर्तुमन्यथा
मन्दविसर्पिणी.मत्कुण कथा २६

१२. समानशीलव्यसनेषु सख्यम्
चण्डरव नामक नीले गीदड की कथा २८

१३. दुर्जनानां मध्ये वस्तुं न शक्यते
ऊँट, कौवा, सिंह, चीते और सियार की कथा ३०

१४. बलवन्तं रिपुं दृष्ट्वात्मानं प्रगोपयेत्
समुद्र और टिट्टिभ की कथा ३४

१५. हितकामानां सुहृदां वचः कर्तव्यम्
हंसद्वय और कछुए की कथा ३६

१६. यद्भविष्यो विनश्यति
मत्स्यत्रय कथा ३८

१७. संघे शक्तिः कलौ युगे
चटक कुञ्जर कथा ४०

१८. पयःपानं हि भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्
सूचीमुख तथा वानर समूह की कथा ४२

१९. उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये
चटक दम्पती और वानर कथा ४३

२०. सत्यमेव जयते
धर्मबुद्धि-पापबुद्धि कथा ४४

२१. आत्महित हेतोः परविनाशं कष्टकारकम्
बगुले और नेवल की कथा ४७

२२. शठे शाठ्यं समाचरेत्
जीर्णधन वणिक् पुत्र और लोहे की तराजु की कथा ४९

२३. मूर्खोऽनुचरः न रक्षणीयः
मूर्ख सेवक बन्दर और राजा की कथा ५१

२४. पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः
चोर ब्राह्मण कथा ५२

२५. वित्तजो ऊष्मा देहिनां तेजो वृद्धिं नयति
हिरण्यक और ताम्रचूड की कथा ५४

२६. लोभो मूलमनर्थानाम्
भील और सूअर की कथा ५७

२७. व्यपदेशेन महतां सिद्धिः सञ्जायते परा
खरगोश और गजयूथपति की कथा ५८

२८. बहवो न विरोद्धव्या दुर्जया हि महाजनाः
धूर्त-ब्राह्मण और बलि.छाग कथा ६१

२९. भिन्नश्लिष्टा तु या प्रीतिर्न सा स्नेहेन वर्धते
ब्राह्मण.सर्पकथा ६३

३०. अतिथि देवो भव
कबूतर और लोभी बहेलिया ६५

३१. परस्परस्य मर्मोद्घाटनेन विनाशः अवश्यम्भावी
बाम्बी और पेट में स्थित साँप की कथा ६८

३२. स्वजातिर्दुरतिक्रमा
मूषिका विवाह कथा ७०
३३. बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्
सर्प-मण्डूक कथा ७२
३४. क्षीणाः जनाः निष्करुणाः भवन्ति
मण्डूकराज गंगदत्त कथा ७५
३५. संकटे धैर्यबुद्धिः कर्तव्या
मगर-वानर कथा ८०
३६. अकर्णहृदयः मूर्खः म्रियते
सिंह और लम्बकर्ण गदहा ८२
३७. स्वभावो दुरतिक्रमः
स्वभाव को त्यागना कठिन है ८५
३८. मौनं सर्वार्थसाधनम्
व्याघ्रचर्म.गर्दभ कथा ८७
३९. नीचमल्पप्रदानेन समशक्तिं पराक्रमैः
महाचतुरक शृगाल कथा ८८
४०. अपरीक्ष्य न कर्तव्यम्
ब्राह्मणी एवं नेवले की कथा ९०
४१. विद्यायाः बुद्धिरूत्तरा
व्यावहारिक ज्ञान शास्त्र ज्ञान से बेहतर है ९२
४२. लोकाचारविवर्जिताः हास्यतां यान्ति
मूर्ख पण्डितों की कथा ९४
४३. मित्रवचनम् अनुलंघनीयम्
गदहे और गीदड़ की कथा ९६
४४. यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा दुर्गतिं प्राप्नोति सः
मन्थर नामक जुलाहे की कथा ९८
४५. अनागततीं चिन्तां करोति यः हास्यपदवीं याति
शेखचिल्ली के मनसूबे और उसके दुष्परिणाम १०१
४६. लोभेन विड़म्बितो बाध्यते
चन्द्रभूपति कथा १०२
४७. एको न गच्छेदध्वानम्
ब्राह्मण बालक और केंकड़े की कथा १०७

1

वर्तमान में पञ्चतन्त्र की उपादेयता

हजारों वर्ष पूर्व प॰ विष्णुदत्त शर्मा द्वारा लिखित पञ्चतन्त्र कथाएँ मानव व्यवहार को सूक्ष्म बुद्धि से देखने-जानने-समझने की मति प्रदान करती हैं। पशु जगत् के पात्रों की कथाओं द्वारा मूढ़मति राजपुत्रों को अल्पावधि में ही नीति एवं राजनीति में पारंगत करने का बड़ा दायित्व था। राजा अमर सिंह के पुत्रों को निष्णात करना, कोई सहज कार्य नहीं था, तो भी विष्णुशर्मा ने रोचक कथाओं द्वारा उपदेशात्मक गूढ़ ज्ञान प्रदान किया। प्रायः नीति-उपदेश सुनने एवं धारण करने में जन प्रवृत्ति नहीं होती तो भी चीनी चढ़ी कुनैन की गोली की भांति ग्रहण करवाए जाने पर हितकारी अवश्य होती है। हिमकण (Snow Flakes) शरीर को सुखद स्पर्श देने वाले होते हैं लेकिन उन्हीं का एकत्रित-संघटित (condensed) रूप शरीर को आहत करने वाला-कष्टकारक प्रतीत होता है।

कथाओं को साहित्यिक दृष्टि से चार रूपों में एकत्रित एवं विभाजित करें, तो (1) परी कथा (Fairy Tale), (2) लोक कथा, (3) कल्पित कथा (Myths) एवं (4) पशु कथा (Fable) के रूपों में देखा जाता है। पञ्चतन्त्र पशु कथाओं (Fables) का संग्रह है जो कि अबोध-बालकों को भी पशु-पक्षियों से सहज रूप में देखने एवं सीखने को प्रेरित करता है। रोचकता की चाशनी में पगा-पका ज्ञान अपने आस-पास के वातावरण में रहने वाले प्राणियों से सम्बन्धित होने के कारण सरल-सरस, मधुर एवं सहज ही ग्राह्य भी होता है। पञ्चतन्त्र बालबुद्धि में उत्सुकता जाग्रत करता है कि किस कठिन परिस्थिति में किस तरह विपत्ति से छुटकारा पाया जा सकता है।

केवल आँखों से ही दृष्टि-दर्शन शक्ति, प्राप्त नहीं होती अपितु

ज्ञान से जानकारी-समझदारी, जीवन दृष्टि-जीने का नजरिया, व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान के अभाव में व्यक्ति अन्धवत् ठोकर-धक्के खाता एवं आहत-पीड़ित होता है। किसी भी प्रकार के आघात-प्रहारों से बचने के लिए दर्शन शक्ति—शारीरिक एवं बौद्धिक (शास्त्र ज्ञान) आवश्यक है। विष्णुशर्मा ने लोभ (Greed) उत्पीड़न, मूर्खता (stupidity) धूर्तता (deceit) धोखाधड़ी (Violation Of trust), स्वामी भक्ति (Loyalty) के परिणामों को कथा माध्यम से सुगमता से दर्शाया-समझाया है।

जीवन के चार प्रमुख उद्देश्य (पुरूषार्थ), धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष हैं। बाल बोध की इन कथाओं में धर्म, कर्त्तव्य, नीति, गूढ़तः भरा पड़ा है।

पञ्चतन्त्र के प्रारम्भ में ही कहा है—संक्षेपेण कथ्यते धर्मो किं विस्तरेण वः।

(1) परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् अर्थात् पुण्य का अर्थ परोपकार और पाप का अर्थ परपीड़ा है (परपीड़ा सम नहीं अधमाई, परहित सरिस धर्म नहीं भाई)।

(2) आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्—अपने आप को जो अच्छा-अनुकूल न लगे वैसा दूसरों से न करे अर्थात् दूसरों से आत्मवत् व्यवहार करें। मनुस्मृति में भी यही भाव व्यक्त किया गया है—स्वस्य च प्रियमात्मनः—2.2, आत्मनस्तुष्टिरेव च, — 12.6। परव्यवहार आत्मीय व्यवहार हो—यही धर्म है।

पञ्चतन्त्र के धर्म प्रतिपादक होने-कहने का अभिप्राय है अपने जैसा ही दूसरों को समझो, उनमें भी हमारी जैसी ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख-नाक-कान इत्यादि एवं कर्मेन्द्रियाँ-हाथ-पैर इत्यादि हैं। उनमें भी रसना-रसास्वादन एवं घ्राण-सूँघने की शक्ति है। सभी के रक्त, हड्डियाँ-त्वचा शरीर है। केवल रंग-आकृति का फर्क होता है। सभी एकमाटी के भाण्डे हैं। भगवान् की शक्ति सभी में विद्यमान है—'एक नूर से सब जग उपजया।' जब व्यक्ति सभी को अपना जैसा समझता है तो वह उन्हें गाली नहीं देता, उनसे उनकी कोई चीज धन-सम्पत्ति नहीं छीनता, उनसे दुर्व्यवहार नहीं करता, दूसरे की बुरी स्थिति में

पसीजता और मदद करता है। इसलिए ही कहा जाता है 'दया धर्म का मूल है पापमूल अभिमान'। को धर्मः ? प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है 'भूतदया'। गांधी जी के प्रिय भजन—वैष्णवजन तो तेने कहिए—पीरपराई जानी रे—में यही सन्देश है।

आधुनिक-वर्तमान में हिंसक प्रवृत्तियाँ, घृणा, शोषण-अत्याचार, छीना-झपटी आदि इन्हीं कारणों से है कि व्यक्ति दूसरे को अपना जैसा नहीं देखता-मानता। अपने में इतना अंहकार भरकर मारधाड़ करता है तथा दंगे फसाद मचाता है। धर्म को अहमियत न देने से ही पैशाचिक आचार-विचार हो जाता है। पञ्चतन्त्र की कथाएँ ही हमें सिखाती हैं कि कैसे हम अपना-दूसरों का जीवन सुखद बना सकते हैं। और तभी रामराज्य की स्थापना साकार-सार्थक हो सकती है।

धर्मपूर्ण शान्त वातावरण में आप अर्थोपार्जन एवं धन संरक्षण की बात सोच एवं कर सकते हैं अन्यथा सभी चेष्टाएँ धरी रह जाती हैं। चोरी-डकैती, लूटपाट, छीना-झपटी, राजनैतिक स्तर पर धन विषयक घोटाले सभी मानसिक कुविचारों के कारण होता हैं और परिणामतः सामाजिक अधःपतन। सद्बुद्धि सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करती है। अशिक्षा-कुशिक्षा, कुविचारों-कुसंस्कारों को जन्म देती है जो कि आजकल दीख पड़ रहा है। सद्विचारों से प्रारम्भ से ही बालक में बुद्धिमता आती है। आस-पास के वातारण में, घर-बाहर-विद्यालय में, होते हुए देखने से ही बालक भाव-विचार, आचरण-व्यवहार, अपनाता है। पशु प्रवृत्तियाँ मानव पर हावी हो रही हैं कुचेष्टाएँ करने के लिए। बल्कि हम इन्हीं पशु कथाओं से शिक्षा-प्रेरणा पाकर, सावधान-जागरूक होकर बुराई को हटाकर अच्छाई की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं। स्वार्थ की न सोचकर परमार्थ की सोच कर आचरण करेंगे तो ही सुख-सम्पत्ति सब ओर बरसेगी। अतः मनुष्य पर ही निर्भर करता है कि वह पशु प्रवृत्ति अपनाकर जंगलराज बनाता-पैदा करता है अथवा इन पशुकथाओं से ही प्रेरणा पाकर बुरे आचरण को त्याग कर अच्छे आचरण को अपनाता है। चिरस्थायी सुखशान्ति का माहौल तो पाखण्डी-धूर्त व्यवहार को

त्यागकर बन सकता है और यह पशु की अपेक्षा उत्तम विचार-आचार वाला मनुष्य ही कर सकता है।

पञ्चतन्त्र की कथाएँ जो सन्देश देती हैं वे अत्यन्त स्पष्ट हैं कि किस प्रकार झूठा-मिथ्या आचारण, व्यवहार, झूठी एवं कुविचारों वाली गप्पें मित्रता में दरार डाल देती हैं। शत्रु पर कभी भरोसा मत करें' क्योंकि सुधरा हुआ शत्रु भी राख में छिपे अंगारे की तरह आग लगा सकता है। उसे तो साम-दाम-दण्ड-भेद नीति से वश में किया जाना चाहिए। ठगी-धूर्तता से पशु को वश में किया जा सकता है यदि वह साम-दाम से वश में नहीं आता। धर्म-जाति रंग भेद को त्याग कर ही चिरस्थायी सम्बन्ध बनाए जा सकते हैं। संगठन में शक्ति होती है इससे ही अत्याचार और कष्ट से छुटकारा पाया जा सकता है। मूर्ख की मूर्खता के कारण सञ्चित धन भी नष्ट हो जाता है, उपार्जन तो भला कहाँ कर पाता है। बुद्धिमान् बुद्धिबल से धनार्जन एवं धन संरक्षण कर पाता है। शीघ्रता में बिना सोचे समझे काम किए जाने पर विनाश ही होता है।

संक्षेप में, जो नीतियुक्त पञ्चतन्त्र की इन कथाओं को पढ़ता और सुनता है उसे इन्द्र भी पराजित नहीं कर सकता—

अधीते यः इदं नित्यं नीतिशास्त्रं शृणोति च।

न पराभवमवाप्नोति शक्रादपि कदाचन।।

2

वित्तैषणा

मानव जीवन के चार प्रमुख उद्देश्य बताए गए हैं—धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष। धर्म का हेतु मोक्ष कहा जाता है लेकिन आजकल धर्म का हेतु अर्थ ही हो गया है। निस्सन्देह जीवन में अर्थ की महत्ता है तभी तो उसका नाम अर्थ है क्योंकि जीवन की सार्थकता-अर्थ—अर्थ से ही है। वैसे भी अर्थ चारों पुरूषार्थों में द्वितीय स्थान पर है। यहां तक कि धर्म के द्वारा लोग अर्थार्जन करते हैं न कि पुण्यार्जन। जबकि होना तो यह चाहिए कि अर्थ से धर्म कमाया जाए।

यद्यपि व्यक्ति खाली हाथ आता है और जाता भी खाली हाथ ही है तथापि जीवन भर मनुष्य दोनों हाथों से जेबें भरने में लगा रहता है। अपनी जेबें भरने के लिए मनुष्य इतने छल-फरेब करता है लेकिन संसार से जाता फिर खाली हाथ ही हैं। अपने साथ कुछ भी नहीं ले जा सकता। उसके साथ तो केवल उसके कर्म ही जाते हैं। यह देखने की बात है कि इन कर्मों को ही व्यक्ति के साथ जाना है तो भी कितना बेफ्रिक है जरा भी सावधान नहीं है, इनके बारे में और जो साथ जाना नहीं है उसे जुटाने में कैसे कुकृत्य कर रहा है। ईश्वर प्रदत्त अमूल्य जीवन को व्यर्थ ही गंवा रहा है। इसे मानव की बुद्धिमत्ता कहें अथवा मूर्खता। यह कहा जाता है कि धरती पर मानव जैसा बुद्धिमान् कोई नहीं, पर उसके जैसा मूर्ख भी कोई नहीं।

ऐसा नहीं कि जीवन में पैसे का कोई स्थान या महत्व नहीं। 'टका बिन टकटकायते'। टकटकी लगाए रखते हैं टके के लिए। टके वाले से टका सा जवाब मिलने पर आशान्वित व्यक्ति के सारे ख्वाब चकनाचूर हो जाते हैं जैसे ऊँचाई से गिरने पर हड्डी-पसली चकनाचूर हो जाती है।

अर्थ शेष तीनों पुरूषार्थों का हेतु बन सकता है यदि उसका समुचित उपयोग, प्रयोग एवं उपार्जन हो। अर्थ, धर्म उपार्जन का साधन बन सकता है मन्दिर, धर्मशाला, औषधालय, विद्यालय, अनाथालय इत्यादि के निर्माण से। देश की व्यापारिक-औद्योगिक समुन्नति के लिए, ज्ञानार्जन एवं वैज्ञानिक तकनीक प्रशिक्षण हेतु धन की महती आवश्यकता है। अर्थ की सार्थकता उपार्जन के साथ उपयोग-प्रयोग में लाए जाने में है संचय में नहीं। विष्णु पत्नी लक्ष्मी का वाहन यद्यपि उल्लू बताया जाता है अर्थात् धन-वैभव-ऐश्वर्य प्राप्त करने पर व्यक्ति उल्लू पर सवार होकर मूर्खतापूर्ण आचरण-व्यवहार करता है। लेकिन हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि लक्ष्मी की बहन, सरस्वती ज्ञान की एवं शक्ति दायिनी दुर्गा-भवानी भी हैं। अर्थ द्वारा ज्ञानार्जन एवं रक्षा साधन जुटाए जा सकते हैं।

अर्थ से कामनाओं, इच्छाओं की पूर्ति, सुख-सुविधाओं का जुटाना सम्भव है। तदापि खाने-पीने, मौज-मस्ती के लिए ही केवल धन खर्च न किया जाए। तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति में ही धन व्यय करना बुद्धिमानी नहीं है। ठीक है कि अच्छा मकान-वाहन हो, मोटर-गाड़ी, नौकर-चाकर हों, अच्छा खाने-पहनने को मिलें, सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण हों। ऐसी चीजों की तो सभी कामनाएँ करते हैं। और इन कामनाओं की पूर्ति के लिए पैसा चाहिए। किन्तु अर्थ का हेतु केवल कामनापूर्ति न हो। अर्थ का हेतु धर्म हो। व्यक्ति अर्थोपार्जन करें, उसका संचय भी करे। लेकिन उस संचित धन से पुण्यार्जन भी करे। धनार्जन द्वारा धर्मार्जन-पुण्यार्जन भी हो। धन संचय से पुण्य संचय भी करे। बचाए हुए धन से दुःखी-पीड़ितों-असहाय व्यक्तियों की रक्षा करे। यही अर्थ का सार्थक उपयोग है धर्म के लिए। वस्तुतः कामनाओं की पूर्ति कामनाओं के भोग से नहीं होती। कामनाओं की अग्नि भोगों की आहूति से अधिकाधिक बढ़ती है। भोग की तृप्ति कभी भोग से नहीं हो सकती। अर्थ की तृप्ति, भोग से नहीं होती परन्तु परमार्थ रूपी यज्ञाग्नि से होती है।

दैनिक जीवन-व्यवहार में अर्थ की सार्थकता को कदापि नकारा नहीं जा सकता लेकिन यह भी एक कटु सत्य है कि अर्थोपार्जन जितना कष्टकारक है उतना ही कठिन उसका समुचित उपयोग एवं रक्षण है। सन्तान का, सुख साधनों से ऐश्वर्य-विलास व्यसनी बनने का भय रहता है। धन रक्षण में डाकू-चोर-लुटेरों, सेंधमार-लठैतों-ठगों से जान माल का खतरा रहता है। अतः किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा धिक्कार है ऐसे धन को, जिसके अर्जन और रक्षण दोनों में ही कष्ट ही कष्ट हो।

पञ्चतन्त्र में भी विविध कथा प्रसंगों में अर्थ प्रशंसा में महती चर्चा है। अर्थ से क्या कुछ सिद्ध नहीं हो जाता। अतः मतिमान्-बुद्धिमान् को यत्नपूर्वक अर्थ प्रयोजन को सिद्ध कर जीवन को सार्थक-सफल बनाना चाहिए—

न हि विद्यते किञ्चिद् यदर्थेन न सिध्द्यति।
यत्नेन मतिमांस्तस्मादर्थमेकं प्रसाधयेत्।।

जिसके पास धन वैभव है उसके सब ही मित्र-बन्धु होते हैं। संसार में वास्तव में वही पुरूष है, वही विद्वान् है जिसके पास धन है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके, यस्यार्थाः स च पण्डितः।।

याचकों के द्वारा धनी व्यक्ति की विद्या, दान, शिल्प, कला, स्थिरता-धैर्य इत्यादि सभी की प्रशंसा ही प्रशंसा की जाती है । धन की महिमा के कारण न कोई ऐसी स्थिरता है (मर्यादा पालन की दृढ़ता) जिसे याचक लोग धनियों की स्तुति करते समय धनियों में न बताते हों। भावार्थ है कि याचक धनिकों के पास जाकर अपने इष्ट लाभ के लिए मूर्ख से भी मूर्ख धनी को सर्वगुण सम्पन्न कहकर उनकी स्तुति करते हैं—

न सा विद्या न तद् दानं न तच्छिल्पं न सा कला।
न तत्स्थैर्यं हि धनिनां याचकैर्यन्न गीयते।।

इस संसार में धनिकों के तो पराये भी अपने सगे की भांति

आचरण करते हैं अर्थात् पराए भी सगे बन जाते हैं और दरिद्रों के तो स्वजन भी श्वजन इव दुष्टता का आचरण-व्यवहार करते हैं–

इह लोके हि धनिनां परो पि स्वजनायते।
स्वजनो पि दरिद्राणां सर्वदा दुर्जनायते।।

ब्याज तथा व्यापारादि विभिन्न उपायों से संचित करके बढ़ाए हुए धन से ही सभी क्रियाएँ जैसे गृहनिर्माण, पुत्र-पुत्री विवाह, दान-यज्ञादि, धार्मिक कृत्यादि, सफल होती हैं जैसे पर्वतों से निकल कर बढ़ी हुई नदियों से कृषि कर्मादि सफल होते हैं–

अर्थेभ्यो पि हि वृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः।
प्रवर्तन्ते क्रियाः सर्वाः पर्वतेभ्य इवापगाः।।

धन का प्रभाव इतना होता है कि अपूज्य भी पूजा जाता है। अगम्य होने पर भी उसके पास जाया जाता है। अवन्द्य होने पर भी वन्दनीय होता है–

पूज्यते यदपूज्यो पि यदगम्यो पि गम्यते।
वन्द्यते यदवन्द्यो पि स प्रभावो धनस्य च।।

भोजन इत्यादि से सभी इन्द्रियाँ सुचारू कार्य करती हैं उसी प्रकार वित्त-धन को सभी क्रियाओं का साधन कहते हैं–

अशनादिन्द्रियाणीव स्युः कार्याण्यखिलान्यपि।
एतस्मात्कारणाद्वित्तं सर्वसाधनमुच्यते।।

यह समस्त संसार ही धन का इच्छुक है इसके लिए शमशान में भी जाकर रहना पड़े तो रहने लगे। अपने निर्धन माता-पिता को छोड़कर दूर-दूर ही रहता है अर्थात् उनसे दूर रहने लगता है–

अर्थार्थी जीवलोको यं श्मशानमपि सेवते।
त्यक्त्वा जनयितारं स्वं निस्वं गच्छति दूरतः।।

जिनके पास धन होता है वे वृद्ध होने पर भी तरूण होते हैं और जो धनहीन होते हैं वे यौवन में भी वृद्ध ही होते हैं–

गतवयसामपि पुसां येषामर्था भवन्ति ते तरूणाः।
अर्थे तु ये हीना वृद्धास्ते यौवने पि स्युः।।

3

कामैषणा

जीवन के उद्भव-उद्गम का आधारभूत पुरुषार्थ है—काम। यदि आदम और हौव्वा में यह सन्तानोत्पत्ति का Instinct ही न होता तो वर्तमान जगत् में मानव जाति ही न होती। वंश परम्परा सन्तति के सूत्र से ही चलती है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' मनुष्य आत्मा, पुत्र के रूप में पुनः जन्म लेती है। मनुष्य सन्तानोत्पत्ति से अपने जैसा एक और प्रतिरूप तैयार कर लेता है। वेदों-उपनिषदों में भी उल्लेख है कि ऋषि-मुनि, देवी-देवता अपने वंश को बढ़ाकर ही मानव बल-दल (Man Power) तैयार करते थे क्योंकि मन में यह भाव होता था कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ—'एको हं बहु स्याम्, प्रजायेय' इति अर्थात् मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ, इसके लिए सन्तानोत्पत्ति करूँ।

जीवन-जगत् का आधार भूत पुरुषार्थ ग हस्थाश्रम में ही सम्भव है। पत्नी के सहयोग से ही सन्तान प्राप्ति एवं उसका पालन-पोषण सम्भव है। दैनिक चर्या द्वारा बालक में गुणों का विकास-संवर्धन माँ के संरक्षण में ही सम्भव है। माता के आँचल में ही स्नेह सिक्त मनोभाव बालक के मन में कोमल भाव उपजाते हैं। सीता द्वारा लव-कुश का ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में संवर्धन, दुष्यन्त द्वारा परित्यक्ता शकुन्तला द्वारा बालक भरत का संवर्धन, उत्तरा द्वारा अर्जुन पुत्र अभिमन्यु को गर्भ में ही चक्रव्यूह की संरचना के संस्कार देना इत्यादि से स्पष्टतः ज्ञात होता है जन्मदात्री माँ ही बालक में सद्गुणों का विकास करने में समर्थ है।

रति एवं कामदेव इस पुरुषार्थ के देवी-देवता माने जाते हैं। कामदेव अपने पुष्प वाणों से प्रहार करके व्यक्ति में आसक्ति-प्रेमभाव जाग्रत करते हैं। यूँ तो इस देवता को कोई स्थूल-भौतिक शरीर प्रदान नहीं किया गया है केवल इनकी स्थिति मन में प्यार के भाव के रूप दर्शायी जाती है इसलिए मनसिज-मनोज इत्यादि इनको नाम दिया जाता है। कालिदास

ने 'कुमारसम्भवम्' नामक महाकाव्य में अत्यन्त सुन्दर भाव-भाषा द्वारा शिव में पार्वती के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने के लिए कामदेव ने अपनी अहं भूमिका निभाई और दानवों के विनाश के लिए कुमार की उत्पत्ति सम्भव की । कामदेव (God of Love) Cupid के रूप में जाने जाते हैं। वर्तमान काल में 14 फरवरी को प्रतिवर्ष Valentine Day के रूप में मनाया जाता है । प्रेमी अपनी प्रेमिका को गुलाब का फूल और मनपसन्द कोई उपहार देकर अपने प्रेम भाव को प्रेमिका के सम्मुख प्रगट करता है।

'काम' का अर्थ 'मनोरथ-कामना', 'इच्छा' से करें तो भी यह पुरुषार्थ विकास, विस्तार, उन्नति का साधन है। एक इच्छा से दूसरी इच्छा जाग त होती है और इन्हीं कामनाओं से प्रेरित होकर वह आगे-आगे विकास हेतु व्यापार-व्यवसाय में अग्रसर होता जाता है। विकास-विस्तार के मूल में है कामनाएँ जो व्यक्ति को दिन-रात व्यस्त किए रखती हैं।

सभी पुरुषार्थों में 'काम' को सर्वप्रमुख स्थान दिया जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

4

मुमुक्षा

मानव जीवन ही मोक्ष पाने का अवसर देता है। मोक्ष प्राप्ति मनुष्य योनि में ही सम्भव है। मानव जीवन की सबसे बड़ी महत्ता-विशेषता यही है। मानव जीवन मोक्ष का द्वार है और इसका मार्ग है निष्काम कर्म। मनुष्य कर्ममय जीवन-सत्कर्म अथवा दुष्कर्मों से अपना भावी जीवन-पशु-कीट-पतंग अथवा मनुष्य योनि पाता है। लेकिन कर्तव्य भाव से किए गए कर्म, निष्काम भाव से किए जाने पर उस-प्राणी को बार बार के जन्म मरण के चक्र से मुक्त कर देते हैं।

मोक्ष का साधन केवल कर्म ही नहीं है, ज्ञान और भक्ति भी है। गीता में स्पष्ट ही कहा गया है—नहि ज्ञानेन सद शं पवित्रमिह विद्यते।

गीता में यह स्पष्टतः बताया है कि केवल श्रद्धावान् ही ज्ञान प्राप्त करता है—श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।

ज्ञानार्जन भी श्रद्धा-आस्था-भावना से ही हो पाता है। 'आचार्यः देवो भव' यह आस्था सर्वप्रथम 'गुरु'-ज्ञान प्रदाता, के प्रति ही होनी चाहिए।

गुरुः ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुदेवो महेश्वरः
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

पाप-पुण्य, कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान होने पर ही व्यक्ति दुष्कर्म नहीं करता।

भगवान् भक्त की भावना को ही देखकर उसकी रक्षा के लिए दौड़े चले आते हैं। भक्त प्रह्लाद्, बालक ध्रुव, मीरा, सूर, तुलसी सभी भव बन्धन से मुक्त हो गए। गीता में स्पष्ट ही कहा गया है—पत्रं, पुष्पं, फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति... तदहमश्नामि प्रयतात्मना। भावना से ही भक्त पत्थर में भी परमात्मा के दर्शन करता है। प्रह्लाद को अनेकानेक कष्ट दिए जाने पर भी, पर्वत-अग्नि से नष्ट किए जाने

पर भी, कंस द्वारा बालक कृष्ण को अनेक दैत्य-दानवों से नष्ट करवाए जाने पर भी भगवान् उन्हें संकटों से बचाने के लिए दौड़ पड़ते थे। भक्ति भाव से सुदामा के तण्डुल, शबरी के जूठे वेर और विदुर के घर साग बड़े चाव से खाए। भक्त की भावना ही भगवत् प्राप्ति का साधन है।

अब विचारणीय है कि मनुष्य कर्म-ज्ञान-भक्ति किस का चयन करता है। अपने जीवन का लक्ष्य, धर्म-अर्थ-काम मोक्ष-इनमें से किन्हें अपना कर अपना जीवन निर्धारण करता है। जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिए मानव योनि के अतिरिक्त कोई भी योनि नहीं है और वह भी पूर्व जन्म में पुण्यों से ही प्राप्त होती है, अन्यथा तो कोई निम्न-निष्कृट योनि ही प्राप्त होती है। 'कर्म प्रधान विश्व रची राखा, को करहिं तर्क बढ़ावहीं साखा' कर्म ही एकमात्र प्रमुख-प्रधान साधन है मोक्ष प्राप्ति का और उसके सहायक भक्ति भावना और ज्ञान हैं जो मनुष्य का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

कर्ममय जीवन के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट ही कहा गया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूः मा ते संगो स्त्वकर्मणि।।

कर्म में ही तेरा अधिकार है, फलों पर कभी नहीं। अपने आप को कर्म के फल का हेतु-कारण मत मान और न ही तेरा अकर्मण्यता-कर्म के प्रति विरक्ति-के प्रति लगाव हो। कर्म, निष्काम भाव से किए जाने पर, दीन दुःखियों के प्रति सेवा भाव से किए जाने पर ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

5

पञ्चतन्त्र की विषयवस्तु

प चतन्त्र की पशु कथाएँ धार्मिक, नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र (वित्त एवं राजनीति के कूट दाँव-पेंच) से सम्बन्धित हैं। यद्यपि ये कथाएँ धर्मशास्त्र के समान सदाचारोपदेशक तो नहीं हैं तथापि व्यावहारिक जगत् में पारस्परिक सम्पर्क की सामान्य काम की बातों से सम्बन्धित हैं। इन उपदेशात्मक पशु कथाओं के सम्बन्ध में हम यह भी नहीं कह सकते कि इनका उद्देश्य केवल चातुरी-चालाकी की प्रशंसा है, नैतिकता धार्मिकता तो केवल नाम मात्र को है।

प चतन्त्र का प्रमुख उद्देश्य बालकों को नैतिक ज्ञान देना है, धर्म एवं व्यवहार पक्ष द्वारा। इन कथाओं में भले और बुरे दोनों ही पक्षों का वर्णन है। जीवन की पवित्रता, कर्त्तव्य-पालन, मित्र की रक्षा, वचन पालन आदि गुणों का वर्णन है तथा छल-प्रप च एवं दम्भ, त्रिया चरित्र, अन्तःपुर के सेवक वर्ग का कपटपूर्ण व्यवहार भी बखूबी दर्शाया गया है, लेकिन प्रमुखता उपदेशात्मक-नैतिक-व्यावहारिक ज्ञान की ही है।

पाँचों तन्त्रों में एक मुख्य कथा के अन्तर्गत अनेक उपकथाओं का समावेश है। ये नीति कथाएँ यद्यपि पशु-पक्षियों आदि से सम्बद्ध हैं किन्तु प्रकारान्तर से मानव जगत् के लिए उपादेय, ग्राह्य एवं रोचक हैं (1) मित्र भेद—सिंह और बैल की मित्रता तुड़वाने की कथा है। (2) मित्र सम्प्राप्ति—काक, कूर्म, म ग और मूषक की मित्रता की कथा है। (3) काकोलूकीय—कौए और उल्लू की कथा। (4) लब्ध प्रणाशा—वानर और मगर की कथा। (5) अपरीक्षित कारक—ब्राह्मणी और नेवले की कथा।

मित्र भेद में वर्णित है कि किस प्रकार दो मित्रों में झगड़ा करा दिया जाता है। पिंगलक नामक सिंह और संजीवक नामक बैल घनिष्ट

मित्र थे। करकट और दमनक नामक दो गीदड़ों ने उनमें आपस में फूट डाल दी और सिंह से बैल की हत्या करवा दी।

मित्र सम्प्राप्ति में यह शिक्षा है कि हमें अनेकानेक मित्र बनाने चाहिए। कपोत, कछुआ, म ग और मूषक साधनहीन होने पर भी मित्रता के बल पर सुखी जीवन व्यतीत करते हैं।

काकोलूकीयम् में इस प्रकार की कथाएँ हैं कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए शत्रु से भी मित्रता कर लें और बाद में उसे धोखा देकर नष्ट कर दें अर्थात् सन्धि-विग्रह का भी सन्देश है इन कथाओं में। कौआ उल्लू से मित्रता कर लेता है और बाद में उल्लू के किले में आग लगा देता है।

(4) **लब्धप्रणाश** में नीति कथाएँ हैं कि बुद्धिमान् व्यक्ति अपने बुद्धिबल से जीता है और मूर्ख पुरूष हाथ में आई हुई वस्तु से हाथ धो बैठता है। वानर और मगर की मित्रता मीठे जामुन के कारण शुरू होती है किन्तु पत्नी द्वारा वानर के हृदय को खाने की जिद के कारण मगर वानर को बहला-फुसला कर घर ले जाते समय मूर्खतावश सारी बात बता देता है। लेकिन बुद्धिमान् वानर पानी के बीच से ही अपने प्राण मगर से यह कह कर बचा लेता है कि मेरा हृदय-कलेजा तो पेड़ पर ही छूट गया है। वापिस जाकर लाने की युक्तिपूर्ण बात बनाकर कैसे वानर ने प्राणरक्षा की और मगर ने मूर्खतावश हाथ में आया हुआ शिकार कैसे गवां दिया।

5. **अपरीक्षितकारक** में नीति कथाएँ हैं कि बिना विचारे सहसा कार्य नहीं करना चाहिए। ब्राह्मणी ने, सर्प से बालक की रक्षा करने वाले नेवले को उसके मुख-पांव आदि पर लगे रक्त को देखकर यह समझ कर मार दिया कि इसने मेरे बालक को खा लिया है। भली प्रकार देखकर विचार कर ही कार्य करना चाहिए अन्यथा हानि होने से पछताना पड़ता है।

6

अपनी योग्यता से परे कार्य करने के दुष्परिणाम

किसी नगर के समीप किसी बनिए के पुत्र ने वृक्षों के बीच में देव मन्दिर बनाना प्रारम्भ किया। उसमें काम करने वाले कारीगर इत्यादि दोपहर को भोजन करने के लिए नगर में चले जाते थे। एक बार जातीय स्वभाव से चञ्चल एवं उखाड़-पछाड़ करने वाले बन्दरों का झुण्ड वहाँ आया। वहाँ किसी बढ़ई के द्वारा आधे चीरे हुए अशन वृक्ष की लकड़ी के खम्बे के बीच अपनी कील-आरी-दराती इत्यादि को फंसी हुई छोड़ दिया गया।

इसी बीच समस्त वानर समूह पेड़ों, मन्दिर की चोटियों, लकड़ी के खम्बों के ऊपर कूदते हुए अपने स्वभाव की चञ्चलतावश उन औजारों इत्यादि को भी खींचने-निकालने लगे। इस वानरसमूह में से किसी बन्दर ने खम्बे पर बैठकर उसमें फंसी कील को निकालने की कोशिश की। उससे कील तो निकल गई लेकिन उसकी लटकती हुई पूँछ-टाँग और अण्डकोश उसमें फंस गए। अन्य साथी बन्दरों द्वारा खींचे जाने पर भी उसे निकाला नहीं जा सका और वृक्ष की दरार में फंसा बन्दर तड़प-तड़प कर मर गया। अतः दूसरे के काम में, जिसका स्वयं को ज्ञान न हो, कभी भी छेड़छाड़ करना उचित नहीं है इससे शारीरिक एवं आर्थिक कष्ट-हानि ही होती है।

इसी प्रकार व्यापार-काम धन्धा शुरू करने से पूर्व उस काम की पूर्ण जानकारी (Knowledge), अभ्यास (Practice & Training) होनी अत्यावश्यक है अन्यथा जान-माल की हानि अवश्यम्भावी है । कार्यदक्षता होने पर ही स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ करना उचित है। नकलची बन्दरों की तरह तुरन्त कार्य की आजमाइश करने में उतावली दिखाने का दुष्परिणाम होता है।

7

गीदड व नगाड़े की कथा

गोमायु नाम का कोई गीदड़ भूख के कारण सूखे गले वाला भोजन की खोज में वन में इधर–उधर घूम रहा था। उसे दो सेनाओं की युद्धभूमि दिखाई पड़ी। वहाँ एक दुन्दुभि (नगाड़ा–ढोल) गिरी पड़ी थी जो वायु के कारण हिलती लताओं तथा डालियों की चोट खा-खा कर शब्द कर रही थी । गीदड़ ने उस शब्द को सुनकर दुःखी मन से सोचा–अब तो मेरा विनाश निकट है। अतः शब्द करने वाले की दृष्टि मुझ पर पड़े उससे पहले ही मैं यहाँ से चल दूँ। लेकिन सहसा उसके मन में विचार आया कि जिस वन में बाप-दादा के समय से रहता चला-आ रहा हूँ उसे सहसा इस प्रकार घबरा कर छोड़ देना उचित नहीं है। क्योंकि–भय व हर्ष के प्राप्त होने पर जो मनुष्य भली भांति विचार करता है और सहसा कोई कार्य नहीं करता वह कभी दुःखी नहीं होता। अतः मैं पहले यह जान लूँ कि यह किसका शब्द है। जब वह धैर्य धारण करके विचार करते हुए धीरे-धीरे वहाँ पहुँचा तब उसने दुन्दुभी को देखा और पास पहुँचकर कुतुहलवश उसे ठोका-पीटा-बजाया। फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर सोचा–अहा इतने दिनों बाद अकस्मात् मुझे चाम-चढ़ा यह ढोल मिला है। यह मेरे लिए काफी दिन का भोजन होगा। निश्चित रूप में यह इतना बड़ा ढ़ोल चर्बी-मांस और रूधिर से खूब भरा होगा।

इसके पश्चात् कठोर चमड़े से मढ़े उस ढ़ोल को फाड़ कर उसमें घुस कर बहुत प्रसन्न हुआ लेकिन उसे खोखले काठ के रूप में देख कर अत्यन्त दुःखी एवं निराश हो गया क्योंकि चमड़ा फाड़ने

की कोशिश में उसके कुछ दाँत भी टूट गए थे। उसने मन ही मन सोचा 'थोथा चना बाजे घना'। अधिक गरजने वाले मेघ बरसते नहीं हैं। किसी भी गीदड़ भभकी से डर नहीं जाना चाहिए अपितु धैर्य धारण कर स्थिति-परिस्थिति को भली-भांति समझकर शत्रु एवं कठिनाई का दृढ़ता से सामना करना चाहिए।

8

काकी कृष्ण सर्प कथा

किसी स्थान में एक बड़ा वट वृक्ष था। उस पर कौवे-कौवी का एक जोड़ा निवास करता था। उसी वृक्ष के खोखले में एक काला साँप भी रहता था जो उन कौवा-कौवी के बच्चों को खा जाया करता था। इससे वे दोनों अत्यन्त दुःखी होकर उपाय सोचने लगे क्योंकि सर्पयुक्त घर में वास तो निश्चित ही मृत्यु सदृश ही है। उपाय से ही जो जीत हो सकती है वह शस्त्रों से भी सम्भव नहीं और छोटे-लघु शरीर होने पर भी शत्रु को हराने-हटाने के लिए कोई न कोई उपाय तो किया जाना चाहिए।

सहसा कौवे ने उपाय सोचकर कौवी को कहा कि हमें नगर में सरोवर के किनारे स्नान करती हुई स्त्रियों के सोने-मोती आदि के उतारे आभूषण-हार इत्यादि को लाकर यहाँ वृक्ष-कोटर में रख देना चाहिए जिसे ढूंढ़ने-लेने के लिए आने पर व्यक्ति साँप को देख कर उसे अवश्य ही मार देगा और हमारा इससे छुटकारा हो जायेगा। यह सोच कर दोनों उसी क्षण उड़कर नगर के एक सरोवर किनारे पहुँचे जहाँ उन्होंने स्नान करती हुई स्त्रियों को देखा। वस्त्राभूषण सरोवर किनारे रक्खे हुए देखकर कौवी चुपके से एक स्वर्णहार चोंच में दबाकर उड़ ली और साथ में पीछे-पीछे कौवा भी। तभी स्त्रियों ने स्वर्णहार हरने वाली कौवी को उड़ते देखा। उनके शोर मचाने पर राजपुरूष उसका पीछा करते हुए वहाँ पहुँचे जहाँ वृक्ष के नीचे उस कौवी ने स्वर्णहार डाला था। वहीं वृक्ष की खोह में फन फैलाए साँप भी बैठा था। तब राजपुरूषों ने उस कृष्णसर्प को तुरन्त लाठियों के प्रहार से मार डाला और कनकसूत्र प्राप्त कर लिया। यह देख हर्षित हुए कौवा-कौवी ने कहा—ठीक ही है, बुद्धिमानों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है उपाय से सब ही सम्भव है । लघु शरीर वाला प्राणी भी अधिक पराक्रमी, दुष्ट व्यक्ति से छुटकारा पा सकता है।

उपायज्ञोऽल्पकायोऽपि न शूरैः परिभूयते

9

बगुले पर केंकड़े की विजय कथा

शत्रुओं पर विजय का उपाय ही एकमात्र बल है जैसे कि लघुशरीर वाले केंकड़े ने लोभी बगुले को, जो कि नित्य प्रति ही धूर्तता से सरेवर में मछलियों को खा जाया करता था, गर्दन से दबोच लिया। किसी वन प्रदेश में विविध-जलचरों से युक्त एक बड़ा सरोवर था। वहाँ एक बगुला रहता था जो वृद्धावस्था के कारण अपने आहार को प्राप्त करने में असमर्थ था। एक बार वह भूख से पीड़ित-क्षीण कण्ठ वाला सरोवर के किनारे बैठा रो रहा था और अपने अश्रुप्रवाह से धरती भिगो रहा था।

अनेक जलचरों सहित एक केंकड़े ने पास पहुँच कर कहा– मामा ! आज आप भोजन क्यों नहीं कर रहे हो, केवल आँसुओं को आँखों से बहाते हुए लम्बी साँसे भर रहे हो ?

बगुले ने कहा—पुत्र ! तुमने ठीक ही समझा। मैंने मछलियों के प्रति वैराग्य हो जाने के कारण अब उपवास का व्रत ले लिया है । इसी कारण समीप आई मछलियों को भी नहीं खाता हूँ । यह सुनकर केंकड़े ने पूछा—मामा ! तुम्हारे वैराग्य का कारण क्या है ?

बगुले ने कहा—बेटा ! मैं इसी सरोवर में पैदा-पला और बड़ा हुआ हूँ । अतः मैं इस सरोवर के जीवों का अहित करना नहीं चाहता। उनका कुछ भला करना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि लगातार 12 वर्षों तक वृष्टि नहीं होगी और इस अनावृष्टि के कारण सभी सरोवर सूख जायेंगे।

केंकड़े ने पूछा—आपने यह किससे सुना है ?

बगुले ने कहा—ज्योतिषियों के मुख से। इस तालाब में बहुत थोड़ा जल रह गया है। यह भी बहुत शीघ्र ही सूख जायेगा। उसके सूख जाने पर जल के अभाव में वे सभी जलजन्तु नष्ट हो

जायेंगे जिनके साथ मैं बड़ा हुआ और आज तक क्रीड़ा करता रहा। इसलिए उनका वियोग, देखने में मैं असमर्थ हूँ। इसलिए मैंने यह उपवास व्रत ले लिया है। इस समय सभी थोड़े जल वाले सरोवरों के प्राणी गहरे जल वाले तालाबों में अपने-अपने सम्बन्धियों द्वारा पहुँचाए जा रहे हैं। कोई मगर, गोह, सूँस और जलहाथी आदि स्वयं जा रहे हैं। किन्तु इस तालाब में जितने भी जल-जन्तु हैं वे सभी निश्चिन्त हैं। मैं विशेषतः इसलिए रो रहा हूँ कि इस तालाब में जल-जन्तुओं का बीजमात्र भी शेष नहीं रह जायेगा।

इसके बाद यह सुनकर उस केंकड़े ने उसकी बात दूसरे जल जन्तुओं की भी बता दी। तब भय से व्याकुल होकर मछली-कछुए आदि जन्तुओं ने उसके पास जाकर पूछा—मामा ! क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे हम लोगों की रक्षा हो सके। बगुले ने कहा—इस जलाशय से थोड़ी ही दूरी पर अत्यधिक जल से भरा हुआ तथा कमलों से सुशोभित एक तालाब है जो 24 वर्ष लगातार अनावृष्टि होने पर भी नहीं सूखेगा। इसलिए यदि कोई मेरी पीठ पर चढ़े तो मैं उसे वहाँ ले जा सकता हूँ।

इसके पश्चात् वे जलजन्तु उसके विश्वास में आकर, हे तात ! हे मामा ! हे भाई ! पहले मैं, पहले मैं (तुम्हारी पीठ पर चढूँगा) कहते हुए उसके चारों ओर एकत्रित हो गए। वह दुष्ट हृदय वाला बगुला भी क्रमशः उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ा कर तालाब के समीप ही में एक शिला पर ले जाकर पटक-पटक कर मारकर खा जाता और लौटकर झूठी खबरों से जलजन्तुओं को प्रसन्न करते हुए नित्यप्रति अपना जीवन यापन करने लगा।

कुछ दिन पश्चात् केंकड़े ने कहा—मामा! सर्वप्रथम मेरे साथ आपकी प्रेमवार्ता हुई थी। अतः मुझे छोड़कर आप दूसरे जलजन्तुओं को क्यों ले जाते हैं ? आज पहले 'मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए। यह सुनकर उस दुष्टात्मा ने विचार किया—मछलियों का माँस खाते-खाते मैं भी ऊब गया हूँ। इसलिए आज इस केंकड़े को ही व्यञ्जन (उपवास के बाद का भोजन) के रूप में खाऊँगा। ऐसा विचार करके उसे पीठ

पर चढ़ा कर उसी वध्यशिला की ओर चल दिया। केंकड़े ने थोड़ी ही दूर से उस चट्टान के आस-पास हड्डियों की ढ़ेरी देखकर तथा मछलियों की हड्डियाँ पहिचान कर उससे पूछा—मामा! यह बताइए कि वह जलाशय कितनी दूर है ? तुम मेरे बोझ से अधिक थके हुए प्रतीत हो रहे हो।

उस बगुले ने भी उस केकड़े को मूर्ख जलजन्तु जानकर तथा इस स्थल पर इसका कोई भी वश नहीं चल सकता, हँसते हुए कहा—केंकड़े ! भला दूसरा जलाशय कहाँ है? यह तो मेरी जीविका का साधन है, इसलिए अपने इष्ट देवता को याद कर लो। तुम्हें भी इस चट्टान पर पटक-पटक कर मारकर खा जाऊँगा। उसके ऐसा कहने पर केंकड़े ने अपने मुख की दोनों दाड़ों से उस बगुले की कमल नाल जैसी उजली-कोमल गर्दन को दबोचकर मार दिया।

इसके पश्चात् वह केंकड़ा उस बगुले की गर्दन लिए हुए धीरे-धीरे किसी प्रकार तालाब पर पहुँचा। तब सभी जल जन्तुओं ने पूछा—केंकड़े! तुम लौट क्यों आए हो ? वह तेरा मामा (बगुला) भी नहीं आया वह देर क्यों कर रहा है ? हम लोग उत्कण्ठा के साथ उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन सबके ऐसा कहने पर केंकड़े ने हंस कर कहा—उस झूठे ठग ने सभी जलजन्तुओं को मूर्ख बनाकर, धोखा देकर थोड़ी दूर पर स्थित चट्टान पर पटक-पटक कर खा लिया। आयु शेष रहने के कारण मैं उसके इरादे को भाँप कर उसकी गर्दन मरोड़कर-तोड़कर यहाँ ले आया हूँ। अब किसी को भी दुःखी-परेशान होने की आवश्यकता नहीं। अब हम सभी जलचर यहीं सुखपूर्वक रहेंगे। शक्ति की अपेक्षा बुद्धि-उपाय से ही कोमल कमजोर व्यक्ति भी अपनी सुरक्षा आप कर सकता है। बुद्धि बल शक्ति बल से बेहतर है।

10

शेर एवं शशक कथा

किसी वन में भासुरक नामक सिंह रहता था। वह बल की अधिकता के कारण नित्य ही अनेकों मृग-शशकादि पशुओं का वध कर डालता था। एक दिन उसी वन में रहने वाले अनेक पशुओं-हिरण, खरगोश, सूअर, भैंसे आदि ने मिलकर सविनय निवेदन किया—स्वामी ! इस प्रकार नित्य ही अनेकानेक पशुओं का वध करने से क्या लाभ? क्योंकि आपकी तृप्ति तो एक ही पशु से हो जाती है। अतः आप हम लोगों से समझौता कर लीजिए। आज से नित्य प्रति एक-एक पशु क्रम से आपके भोजन के लिए आ जाया करेगा। ऐसा करने से आपको बिना कष्ट के बैठे-बिठाए भोजन मिल जाएगा और हम लोगों का सर्वनाश भी नहीं होगा। अतः आप इस राजधर्म का पालन कीजिए। राजा के लिए कहा भी गया है कि—जो बुद्धिमान् राजा अपनी शक्ति के अनुसार रसायन सेवन की तरह धीर-धीरे राज्य का उपभोग करता है वह शीघ्र ही अधिक समृद्धि को प्राप्त करता है।

जैसे मन्त्रपूर्वक *मन्थन करने* से सूखी, लकड़ी को रगड़ने से अग्नि पैदा होती है, उसी प्रकार विधिपूर्वक बोई-जोती गई ऊसर भूमि भी धान्यादि फल देने वाली बन जाती है।

राजाओं के लिए प्रजा का पालन करना इस लोक में प्रशंसनीय होता है तथा परलोक में स्वर्ग रूपी कोष को बढ़ाने वाला होता है। किन्तु प्रजा को पीड़ा पहुँचाना राजा के लिए धर्मनाश का कारण तथा पाप और अपयश को देने वाला होता है।

राजा रूपी ग्वाले को चाहिए कि वह अपनी प्रजा रूपी गाय का पालन पोषण करते हुए उससे धन रूपी दूध का संग्रह धीरे-धीरे करे तथा उससे न्याय का व्यवहार करे। जो राजा अपने अविवेक के

कारण बकरी की तरह निरपराध प्रजा को मार डालता है। उससे उसे एक बार ही उसके मांस भक्षण से तृप्ति मिल सकती है किन्तु दूसरी बार दूध पीकर धन से प्राप्त होने वाली किसी भी प्रकार की तृप्ति नहीं मिल सकती।

जैसे फल का इच्छुक माली, जल आदि देकर यत्नपूर्वक बीजाँकुरों को बढ़ाकर वृक्ष बना देता है उसी प्रकार राज्योपभोग के इच्छुक राजा को चाहिए कि वह दान-मान आदि से प्रजा की सन्तुष्टि करके एवं वृद्धि करके उसे वैभवशाली बना दे।

राजा रूपी दीपक, अपने भीतर स्थित निर्मल गुणों से, प्रजारूपी पात्र से, धन रूपी तेल खींचते हुए भी किसी की दृष्टि में नहीं आता अर्थात् कर के रूप में धन लेना किसी को भी नहीं अखरता।

पालन पोषण करने के बाद ही जैसे समय पर गाय दुही जाती है तथा सींचने के बाद फूल-फलादि युक्त लता से फल-फूल चुना जाता है उसी प्रकार राजा को भी समयानुसार पालन-पोषण करने उपरान्त ही प्रजा से कर लेना चाहिए।

जिस प्रकार अत्यन्त यत्नपूर्वक सुरक्षित, अत्यन्त दुबला-पतला बीजांकुर भी समय आने पर फल देने वाला हो जाता है उसी प्रकार सुरक्षित प्रजा भी समय पर कर (फल) देने वाली होती है।

सोना, धान्य (सभी प्रकार के अन्न) रत्न तथा विविध प्रकार के वाहन तथा अन्य सभी प्रकार की वस्तुएँ राजा को प्रजा से ही प्राप्त होती हैं। प्रजा से ही हित करने वाले राजाओं की वृद्धि होती है किन्तु उसमें भी कोई सन्देह नहीं कि प्रजा का विनाश होने से राजा का भी विनाश हो जाता है।

उनकी बातों को सुनकर भासुरक ने कहा—आप लोग सत्य ही कह रहे हैं। किन्तु यदि मेरे यहाँ बैठे-बैठे नित्य प्रति एक-एक जानवर नहीं आता है तो मैं निश्चय ही सभी को मार डालूँगा और खा जाऊँगा।

तब सभी जानवर वैसी प्रतिज्ञा-समझौते के अनुसार करके निर्भयपूर्वक घूमने लगे। एक जानवर प्रतिदिन शेर के आहार के लिए समझौते के अनुसार जाता था चाहे वह छोटा हो या बड़ा, बूढ़ा हो बच्चा, दुःखी हो या वैरागी। लेकिन ठीक समय पर दोपहर तक एक पशु अवश्य ही सिंह के आहार के लिए उपस्थित हो जाता था।

एक बार जाति क्रम से खरगोश की बारी आई। वह सभी पशुओं द्वारा प्रेरित किया जाता हुआ, इच्छा न रहने पर भी धीरे-धीरे चलता हुआ, मन ही मन उसके मारने का उपाय सोचते हुए समय बिताकर विलम्ब से पहुँचा। रास्ते में उसे एक कुँआ दिखाई दिया। उसने ऊपर से झाँककर देखा तो अपनी परछाई दिखाई दी। अपनी परछाई कुएँ में देख कर खरगोश मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि मैं भासुरक शेर को भी कुएँ में उसकी परछाई दिखा कर और उसे छिपा हुआ दूसरा शेर बता कर क्रुद्ध कर दूँगा और क्रोध में वह उसे दूसरा शेर समझ कर मारने के लिए ज्यों ही कुएँ में कूदेगा तो स्वयं ही मर जायेगा।

थोड़ा दिन शेष रहने पर खरगोश शेर के पास पहुँचा। शेर भी काफी समय बीत जाने के कारण देर होने से भूख के कारण सूखे कमजोर कण्ठ वाला होने से क्रोधपूर्वक बोला—सुबह सवेरे ही मैं सभी प्रणियों को मार कर वन को जन्तुरहित कर दूँगा। तभी खरगोश धीरे-धीरे उसके पास पहुँचकर प्रणाम करके खड़ा हो गया। शेर ने क्रोधपूर्वक उसे डाँटते हुए कहा—अरे नीच खरगोश! एक तो तू इतना छोटा है, दूसरा इतना विलम्ब करके आया है। अतः इस अपराध के कारण तुझे मारकर प्रातः काल सभी जानवरों को जड़मूल से नष्ट कर दूँगा।

तब शशक ने विनयपूर्वक कहा स्वामी ! इसमें न तो मेरा अपराध है और न अन्य जानवरों का ही है। आप देर से आने का कारण तो सुनें। सिंह ने कहा मेरे दाढ़ों के भीतर पहुँचने से पहले झटपट कहो। शशक ने कहा—स्वामी, जातिक्रम से मेरी बारी आने पर मुझे अत्यन्त स्वल्पकाय जानवर सभी जानवरों ने पाँच अन्य खरगोशों को

साथ भेजा था। हम लोग आ रहे थे कि रास्ते में एक अन्य शेर ने अपनी माँद से निकल कर कहा—अरे! तुम लोग कहाँ जा रहे हो। तब मैंने कहा—हम लोग समझौते के अनुसार स्वामी भासुरक शेर के पास उनके भोजन के लिए जा रहे हैं। तब उस शेर ने कहा—यदि ऐसी बात है तो यह वन प्रदेश मेरा है। सभी जानवरों को मेरे साथ अनुबन्ध का निर्वाह करना चाहिए। वह भासुरक तो चोर है, उसे शीघ्र बुलाकर ले आओ, हम दोनों में से जो अधिक पराक्रमी होगा, वही सभी पशुओं को खायेगा। अतः मैं अब उसकी आज्ञा से आपके पास आया हूँ। समय बीतने का यही कारण है। अब स्वामी जैसा उचित समझें वैसा करें।

यह सुनकर भासुरक ने कहा—भद्र ! यदि ऐसी बात है तो मुझे शीघ्र ही उस चोर सिंह को दिखलाओ ताकि मैं पहले उसे नष्ट कर शान्ति से भोजन प्राप्त कर सकूँ। क्योंकि शत्रु और रोग के उत्पन्न होते ही जो उसे नष्ट नहीं कर देता वह उनके बढ़ जाने पर, बलवान् होते हुए भी उन्हीं के द्वारा मारा जाता है।

तब भासुरक सिंह ने कहा—शीघ्र ही मुझे उस स्थान पर ले चलो जहाँ वह छिपकर बैठा है। तब शशक ने भासुरक को कहा—इस कुएँ में आप झाँक कर देखें आपके भय से वह इसमें छिप गया है। जब शेर ने कुएँ में झाँका तो जल में उसे अपनी परछाई दिखी जिसे उसने दूसरा शेर समझते हुए गरजते हुए छलाँग लगा दी और इससे उसके प्राणों का अन्त हो गया। शेर को मरा जान प्रसन्नतापूर्वक खरगोश ने अपने अन्य वन-वासी पशुओं को सूचित किया और तदुपरान्त सभी पशु वन में सानन्द रहने लगे। अतः इस कथा से हमें यह सीख लेना चाहिए कि जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है, निर्बुद्धि के पास बल कहाँ ?

न स्वभावेऽत्र मर्त्यानां शक्यते कर्तुमन्यथा

11

मन्दविसर्पिणी—मत्कुण कथा

अज्ञात चरित्र वाले व्यक्ति को अपने समीप आश्रय नहीं देना चाहिए जैसे मत्कुण नामक खटमल को आश्रय देने से मन्दविसर्पिणी जूँ मारी गई थी। किसी राजा की मनोरम सुखद शय्या में उजले कपड़ों के बीच सफेद मन्दविसर्पिणी नाम की जूँ रहती थी। वह उस राजा के रक्त का स्वाद लेती हुई आनन्दपूर्वक रहती थी। एक दिन उस शय्या में मत्कुण नाम का अग्निमुख खटमल आ पहुँचा। उसे देखकर जूँ ने कहा—अरे अग्निमुख तू यहाँ, कहाँ से आ पहुँचा। किसी के जानने से पहले ही तू यहाँ से शीघ्र ही चला जा।

मत्कुण ने कहा—घर आने वाले दुष्ट से भी ऐसा कहना उचित नहीं है। शास्त्रों में भी—आइए-आइए, विश्राम कीजिए, यह आसन लगा है, आप बहुत दिनों के बाद क्यों दिखाई दिए ? क्या समाचार है ? क्यों अत्यन्त दुर्बल दिखाई पड़ रहे हो ? कुशल पूर्वक तो हैं आप ? आपके दर्शन से मुझे बहुत खुशी हुई—इत्यादि इस प्रकार की बातें सज्जन अपने घर आने वाले दुष्ट से भी किया करते हैं क्योंकि धर्मशास्त्रों में ग हस्थों का यही धर्म बताया गया है जो शीघ्र ही स्वर्ग देने वाला होता है।

मत्कुण ने कहा मैंने अनेक मनुष्यों के आहार दोष के कारण कड़वे (कटु) तीखे (तिक्त), कसैले (कषाय) खट्टे (अम्ल) स्वाद वाले रुधिरों का आस्वादन तो किया है किन्तु मधुर रक्त का आस्वादन कभी नहीं किया। इसलिए तुम यदि क पा करो तो विविध प्रकार के व्य जन तथा अन्न-पान, चोष्य (चूसने वाले) लेह्य (चाटने वाले) स्वादिष्ट आहार के कारण राजा के मीठे रक्त का आस्वादन करके मैं भी अपनी जीभ को त प्त कर लूँ। भूख से पीड़ित होकर मैं तुम्हारे घर आया हूँ और तुमसे भोजन पाने की अभिलाषा रखता हूँ। तुम्हें अकेले ही इस राजा का रक्त पीना

उचित नहीं है। यह सुन कर विसर्पिणी ने कहा—रे खटमल ! मैं इस राजा के सो जाने पर इसके रक्त का आस्वादन करती हूँ और फिर तू तो अग्निमुख और चंचल है। यदि तू भी रक्तपान करना चाहता है तो मेरे बाद तू रक्तपान कर लेना। उसने कहा—ठीक है देवि ! जब तक आप रक्तपान नहीं कर लेती तब तक देवता और गुरु की सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि मैं रक्तपान नहीं करूँगा । इन दोनों की मन्त्रणा के बीच, राजा शय्या पर आकर सो गया।

इसके पश्चात खटमल ने जीभ की चंचलता और अत्यन्त उत्कण्ठा के वशीभूत होकर अभी उस जागते हुए राजा को काट लिया। किसी व्यक्ति के स्वभाव में उपदेश मात्र से परिवर्तन नहीं किया जा सकता जैसे भली भांति गर्म किए जाने पर भी पानी फिर से ठंडा हो जाता है। अग्नि अपने ऊष्ण स्वभाव को छोड़कर भले ही ठण्डी हो जाए और चन्द्रमा भले ही अपनी शीतल प्रक ति को छोड़कर भले ही आग की तरह जलने लगे किन्तु संसार में मनुष्यों की प्रक ति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता—''न स्वभावे त्र मर्त्यानां शक्यते कर्तुमन्यथा''।

इसके बाद सूईं की नोक सा विंधा हुआ वह राजा तत्काल ही शय्या छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—अरे देखो तो इस चादर में कोई खटमल या जूँ अवश्य ही है जिसने मुझे काट लिया है। उस समय वहाँ जो सेवक उपस्थित थे उन्होंने तत्काल ही चादर को सूक्ष्म द ष्टि से देखना प्रारम्भ किया। इसी बीच खटमल तो अपनी चंचलता से शीघ्र ही पलंग में घुस गया किन्तु धीरे-धीरे चलने वाली जूँ कपड़े के जोड़ के भीतर दिखाई देने से पकड़ कर मार दी गई।

अतः अज्ञात चरित्र-स्वभाव वाले व्यक्ति को अपने पास आश्रय नहीं देना चाहिए।

12

चण्डरव नामक नीले गीदड की कथा

किसी वन में चण्डरव नामक गीदड़ रहता था। एक बार भूख से व्याकुल होने पर नगर में प्रविष्ट हुआ। नगर में रहने वाले कुत्ते उस गीदड़ को देख भौंकने लगे और उस पर झपट कर अपने पैंने दाँत और दाड़ों से उसे काटने-चबाने लगे। किसी प्रकार उनसे अपने को छुड़ा कर अपनी प्राण रक्षा के लिए समीपवर्ती एक धोबी के घर में घुस गया और वहाँ नील से भरे टब में कुत्तों के आक्रमण से आत्मरक्षा की हड़बड़ी में गिर गया। किसी प्रकार जब वह नीले टब से बाहर आया तो उसका रंग नीला हो गया था। कुत्ते भी उसे गीदड़ न जानकर अपने-अपने स्थान की ओर चले गए। चण्डरव भी बहुत दूर जंगल की ओर चला गया।

इसके पश्चात् शंकर जी के नीले गले जैसे तथा तमालवक्ष के समान गाढ़े नीले रंग वाले अपूर्व प्राणी को देखकर सिंह, बाघ, भेड़िए, चीते आदि सभी जंगल के जानवर भय से व्याकुल होकर भागने लगे और कहने लगे—पता नहीं कैसा-कौन प्राणी है, इसका आचरण भी पता नहीं कैसा हो और इसमें कितना बल हो, इसलिए कहीं दूर चले चलो, क्योंकि कहा भी गया है—जिसके आचरण, वंश और पराक्रम का पता न हो तो अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को कभी भी उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

चण्डरव ने भी उन्हें भय से व्याकुल देखकर कहा—रे-रे पशुओं ! मुझे देखकर भय से व्याकुल होकर तुम क्यों भाग रहे हो ? तुम डरो मत। आज ही ब्रह्मा जी ने मुझे बनाकर कहा कि जानवरों के बीच में कोई राजा नहीं है। इसलिए मैं तुम्हारा राज्याभिषेक करता हूँ और तुम्हारा नाम ककुद्द्रुम रख रहा हूँ। तुम पथ्वी पर जा कर उन सभी जानवरों की रक्षा एवं पालन करो। इसलिए मैं आया हूँ। मेरी छत्रछाया में अब तुम सभी को सुखपूर्वक जीवन बिताना चाहिए, ककुद्द्रुम नाम वाला मैं तीनों लोकों का स्वामी, तुम्हारा राजा हूँ। यह सुनकर सभी जानवरों ने 'हे स्वामी!

हे प्रभो ! आज्ञा कीजिए, इस प्रकार कहते हुए सिंह-व्याघ्रादि सभी जानवर उसे घेर कर उसके चारों ओर खड़े हो गए।

इसके पश्चात् उसने शेर को मन्त्री, बाघ को शय्यापालक, चीते को ताम्बूल वाहक और भेड़ियों को द्वारपाल के पद पर नियुक्त किया। वह अपने सगे सम्बन्धी गीदड़ों से बातचीत भी नहीं करता था। यहाँ तक कि उसने सभी गीदड़ों को गर्दन पकड़ कर बाहर निकलवा दिया था। इस प्रकार उसके राज्य करते हुए सिंहादि, जानवरों को मार कर उसके सामने रख देते थे। वह राजधर्म के अनुसार उसे बाँट कर सभी को दे देता था। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर एक बार सभा में बैठने पर दूर से आते हुए गीदड़ों का स्वर सुनाई दिया। गीदड़ों के स्वर को सुनकर उसके शरीर में रोंगटे खड़े हो गए और नेत्रों से आनन्द के आँसु बहने लगे और उसने भी उच्च स्वर में चिल्लाना शुरू कर दिया। सिंहादि ने भी, उसके उच्च स्वर को सुनकर अरे यह तो गीदड़ है, ऐसा समझ-जानकर लज्जा से अपना सिर झुका लिया और परस्पर कहने लगे अरे इस नीच गीदड़ ने हम लोगों से सेवक का काम करवाया, अतः इसे मार डालो। यह सुनकर वह गीदड़ चण्डरव भागना ही चाहता था कि सिंहादि पशुओं ने वहीं उसके टुकड़े कर दिए। अतः अपने अन्तरंग-घनिष्ट व्यक्तियों को छोड़ कर बाहर निकाल देने और बाहरी लोगों को पास उच्च पद देकर अन्तरंग बना कर रखने से अवश्य ही व्यक्ति, राजा ककुद्द्रुम की भाँति, नाश को पाता है।

13

ऊँट, कौवा, सिंह, चीते और सियार की कथा

दुष्ट चाहे छोटे भी हों किन्तु उनके बीच में रहना कठिन है क्योंकि वे किन्हीं भी उपायों से मार ही डालते हैं। चाहे विद्वान् हो चाहे शूद्र विचार वाले प्रायः सभी कपट द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं और कृत्याकृत्य का विचार नहीं करते जैसे कौवे आदि पशुओं ने मिलकर ऊँट के साथ किया।

किसी वन में मदोत्कट नामक सिंह रहता था। चीता, कौवा और गीदड़ उसके अनुचर थे। एक बार इधर-उधर घूमते-घूमते उन्होंने क्रथनक नामक ऊँट को देखा। तब सिंह ने कहा यह तो बड़ा आश्चर्यजनक जन्तु है। इससे मालुम करो कि यह जंगली है या किसी गाँव का रहने वाला है। यह सुनकर कौवे ने कहा—स्वामी यह गाँव का रहने वाला ऊँट नामक एक विशेष पशु है जो आपका भोज्य भी है, अतः आप इसे मार डालिए। सिंह ने कहा कि मैं अपने घर आए प्राणी को नहीं मारता। क्योंकि शास्त्रों में कहा भी गया है कि—यदि विश्वास करके अथवा निर्भय होकर शत्रु भी यदि घर पर आ जाए तो जो व्यक्ति उसे मारता है तो उसे सौ ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगता है। इसीलिए उसे अभयदान देकर मेरे पास ले आओ ताकि मैं उससे यहाँ आने का कारण जान लूँ। तब वे सभी उसे विश्वास दिलाकर तथा अभयदान देकर उसे मदोत्कट के पास ले आए और वह भी प्रणाम करके बैठ गया। पूछने पर उसने बताया कि वह अपने झुण्ड से बिछुड़ जाने के कारण भटक रहा है।

तब सिंह ने कहा—हे क्रथनक अब तुम गाँव में जाकर फिर से बोझा ढोने का कष्ट मत उठाओ। इसी जंगल में निर्भय होकर मरकत मणि जैसी हरी-भरी घास खाते हुए सर्वदा मेरे पास मेरे साथ रहो। वह भी ''अच्छा ऐसा ही हो'' कहकर निर्भय होकर विचरण करते हुए उन्हीं के बीच में सुखपूर्वक रहने लगा।

इसके पश्चात् एक दिन मदोत्कट की एक जंगली हाथी से मुठभेड़

हो गई, जिससे उसके मूसल जैसे दांतों के प्रहार से उसे बड़ी पीड़ा हो गई और शक्तिहीन होने के कारण पग भर भी चलने में असमर्थ हो गया। कौवे आदि भी स्वामी के शक्तिहीन होने के कारण भूख से व्यथित हो गए। तब शेर ने उनसे कहा—कहीं से किसी जानवर को ढूँढो जिससे कि मैं ऐसी दशा में पहुँच जाने पर भी उसे मारकर तुम्हे भोजन दे सकूँ।

वे चारों इधर-उधर घूमने लगे। किन्तु जब उन्हें कोई भी जानवर नहीं मिला तब कौवे और गीदड़ ने आपस में सलाह की। गीदड़ ने कहा—अरे भाई कौवे ! बहुत घूमने से कोई लाभ नहीं है। हमारे स्वामी का विश्वास पात्र यह जो क्रथनक है, जो सदैव उसके पास ही रहता है, उसी को मारकर क्यों न भोजन प्राप्त करके प्राण रक्षा की जाए। कौवे ने कहा—आपने बहुत ठीक कहा किन्तु स्वामी ने उसे अभयदान दिया है अतः यह वध करने योग्य नहीं है। गीदड़ ने कहा—कौवे भाई ! मैं स्वामी से ऐसे निवेदन करूँगा कि जिससे स्वामी उसके वध के लिए मान जायेंगे। इसलिए तब तक तुम यहीं ठहरो जब तक कि मैं घर जाकर और स्वामी की आज्ञा लेकर यहाँ वापिस न आऊँ।

ऐसा कहकर वह गीदड़ स्वामी के पास पहुँचकर बोला—सारा जंगल छान कर हम लोग खाली ही लौट आए हैं, कोई जानवर आहार के लिए नहीं मिला। अब हम सब क्या करें ? भूख के मारे पग भर भी नहीं चल सकते। श्रीमान् को भी कुछ भोजन तो अपने जीवन निर्वाह के लिए करना ही है आपकी आज्ञा हो तो क्रथनक के माँस से आपके भोजन का प्रबन्ध किया जाए। सिंह ने उसकी यह कठोरवाणी सुनकर क्रोधपूर्वक कहा—अरे नीच! पापी! तुझे धिक्कार है। यदि तुमने फिर कभी ऐसा कहा तो तुझे उसी क्षण मार दूँगा, क्योंकि मैने उसे अभय दान दिया है। फिर कैसे उसे मार सकता हूँ ? कहा भी गया है कि—गोदान, भूदान और अन्न दान इतने महत्वपूर्ण दान नहीं है क्योंकि विद्वानों ने इस संसार में सभी दानों में अभयदान को ही सबसे विशिष्ट दान कहा है।

यह सुनकर गीदड़ ने कहा कि यदि अभयदान देकर वध किया जाए तब दोष होता है किन्तु यदि वह श्रीमान् के चरणों में भक्तिवश जीते जी स्वयं को आपको समर्पित कर दे तो इसमें दोष नहीं होगा। अतः वह यदि स्वेच्छा से स्वयं को आपको अर्पित करे तो अवश्य ही आप

उसे मार डालें अन्यथा हम में से किसी एक को मार डालें लेकिन हमारा लघुकाय होने से सबका पेट नहीं भरेगा। हम लोगों के इन प्राणों से क्या लाभ, यदि यह स्वामी के काम न आ सके। क्षुधा के कारण यदि आपके प्राणों का नाश हो गया तो शत्रु लोग, प्रधान के नष्ट होने पर उस कुल को ही नष्ट कर देते हैं।

यह सुनकर मदोत्कट ने कहा—यदि ऐसी बात है तो तुम्हें जैसे अच्छा लगे वैसा ही करो। यह सुनकर गीदड़ ने शीघ्रता से जाकर यह बात अपने अन्य साथियों से कही—अरे साथियों! स्वामी अब अन्तिम दशा में हैं। इसलिए अब इधर-उधर घूमने से कोई लाभ नहीं, उनके बिना हम लोगों की कौन रक्षा करेगा? अतः हम लोग चल कर भूख के कारण मरते हुए स्वामी को अपना शरीर समर्पित कर दें जिससे स्वामी की कृपा के ऋण से मुक्त हो जाएँ।

इसके पश्चात् वे सभी आँखों में आँसू भर कर मदोत्कट को प्रणाम करके बैठ गए। उनको देख मदोत्कट ने कहा कि कोई जानवर देखा क्या, मिला कि नहीं। तब कौवे ने कहा—स्वामी! हम लोग सभी जगह घूम चुके हैं किन्तु कोई भी जानवर नहीं मिला। अतः आज मुझे खाकर स्वामी प्राणों की रक्षा करें। जिससे आपके प्राणों की रक्षा हो जाए और मुझे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाए।

यह सुनकर गीदड़ ने कहा—आप तो बहुत छोटे शरीर वाले हैं। एक तो आपको खाने से स्वामी की भूख नहीं मिट पायेगी दूसरे आपको खाने से दोष भी होगा जैसा कि कहा भी गया है— पहिले तो कौवे का माँस दूसरे अत्यन्त थोड़ा तथा रस धातु आदि को बढ़ाने में असमर्थ होने के कारण बलहीन मांस खाने से क्या लाभ ? इससे भूख की त प्ति भी नहीं हो सकेगी। अब आपने स्वामीभक्ति दिखला दी और स्वामी से प्राप्त जीविका के ऋण से मुक्त हो गए तथा दोनों लोकों में साधुवाद भी मिल गया। अब आप आगे से हटें। जिससे मैं स्वामी से कुछ निदेवन कर सकूँ। कौवे के दूर हट जाने पर गीदड़ ने आदर के साथ प्रणाम किया और बैठकर निवेदन किया—स्वामी ! आज मुझे खाकर आप अपनी जीवन यात्रा-प्राण रक्षा करें और मुझे दोनों लोकों को प्राप्त कराएँ।

यह सुनकर चीते ने कहा—आपने ठीक ही कहा है किन्तु आप भी

स्वल्पकाय और सजातीय है तथा नखायुध होने के कारण अभक्ष्य भी है। तदुपरान्त चीते ने गीदड़ को सामने से हटाकर मदोत्कट को प्रणाम करके कहा—स्वामी ! आज मेरे प्राणों से अपने प्राणों की रक्षा कीजिए जिससे मुझे स्वर्ग में स्थान प्राप्त हो तथा मेरी कीर्ति का विस्तार हो। यह सुनकर क्रथनक ने विचार किया कि इन सभी ने अच्छी–अच्छी बाते करके स्वामी का दिल जीत लिया। अतः स्वामी ने किसी को भी नहीं मारा। अतः मैं भी समयोचित निवेदन करूँ जिससे ये तीनों मेरी बात का समर्थन करें। ऐसा निश्चय करके उसने कहा—आप भी तो नखायुध और सजातीय हैं इसलिए स्वामी आपको कैसे खाएँगे ? क्योंकि जो यदि मन से भी अपनी जाति वालों का अनिष्ट सोचता या करता है उसका इस लोक और परलोक दोनों में ही अनिष्ट होता है। अतः अब आप सामने से हटिए ताकि मैं स्वामी से निवेदन कर सकुँ। चीते के सामने से हट जाने पर क्रथनक ने प्रणाम करके कहा—स्वामी ! ये सभी आपके खाने योग्य नहीं हैं अतः मेरे प्राणों से अपनी प्राण-रक्षा कीजिए जिससे मुझे दोनों लोकों की प्राप्ति हो। कहा भी गया है कि श्रेष्ठ सेवक अपने स्वामी के लिए प्राणों का परित्याग करके जिस गति को प्राप्त करते हैं उसे न तो यज्ञ करने वाले ही पाते हैं और न योगी ही पा सकते हैं।

ऐसा कहने पर गीदड़ और चीते ने उसकी दोनों काँखे फाड़ डाली जिससे क्रथनक मर गया। और सभी नीच पण्डित रूप जानवरों ने उसे खा लिया। क्षुद्र विचार वाले प्राणियों के मध्य नहीं रहना चाहिए क्योंकि उनके कुत्सित मन-बुद्धि-विचार और आचरण के कारण प्राण संकट में पड़ सकते हैं। जब पहाड़ की कड़ी से कड़ी चट्टान भी कोमल जल के निरन्तर स्पर्श/आघात से टूट जाती है तब वैमनस्य उत्पन्न करने में कुशल दुष्टों के निरन्तर कान भरते रहने से स्वामी के हृदय दूषित-विचलित हो ही जाते हैं।

14

समुद्र और टिट्टिभ की कथा

किसी समुद्र के किनारे टिट्टिभ का एक जोड़ा रहता था। समयानुसार टिट्टिभी ने गर्भ धारण किया। कुछ काल उपरान्त प्रसवकाल समीप होने पर उस टिट्टिभी ने कहा—हे प्रिय ! मेरे प्रसव का समय हो गया है अतः किसी उपद्रव रहित स्थान की खोज कीजिए जहाँ मैं अण्डे दे सकूँ। टिट्टिभ ने कहा—हे कल्याणी ! समुद्र का तट बहुत ही रमणीय है। इसलिए यहीं प्रसव करो। टिट्टिभी ने कहा—इस स्थान पर पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार भाटा आने से जो वेगवती लहरें किनारे से जोर-जोर से टकराती हैं वे तो मदमस्त हाथी को भी अपने साथ खींच कर ले जाती हैं। इसलिए यहाँ से दूर किसी स्थान की खोज कीजिए। यह सुन कर टिट्टिभ ने हंसकर कहा—कल्याणि ! तुम्हारा कहना तो ठीक है किन्तु समुद्र की क्या हस्ती है जो वह मेरी सन्तान को नष्ट कर सके तुम निश्चिन्त होकर यहीं प्रसव कार्य करो। क्योंकि कहा भी गया है—जो व्यक्ति पराजय के भय से अपना स्थान छोड़ देता है, यदि ऐसे व्यक्ति को पैदा करके कोई माता अपने को पुत्रवती कहे तो फिर वन्ध्या किसे कहा जायेगा ?

यह सुनकर समुद्र ने विचार किया कि इस कीड़े-मकौड़े जैसे तुच्छ पक्षी में इतना अभिमान ? अतः ठीक ही कहा गया है—कहीं आकाश टूटकर मेरे ऊपर न गिर पड़े इस भय से टिट्टिभ अपने पैरों को ऊपर करके सोता है ताकि उस पर आकाश को रोक लूँ। इसे यही सिद्ध होता है कि इस संसार के सभी छोटों-बड़ों में अपने मन की कल्पना के अनुसार अभिमान की मात्रा पाई जाती है। अतः मैं कौतुकवश इसकी शक्ति की परीक्षा लूँगा। मेरे द्वारा अण्डे हरण किए जाने पर देखूँ यह क्या करेगा? यह सोचकर वह शान्त हो गया।

इसके पश्चात् अण्डे रखकर टिट्टिभी जब चारे की खोज में कहीं चली गई तब समुद्र ने लहरों से उसके अण्डों का अपहरण कर लिया।

लौटने पर प्रसवस्थान को अण्डों से रहित देखकर टिट्टिभी ने कहा—मूर्ख ! मैने तुमसे पहले ही कहा था कि समुद्र की लहरों से अण्डे नष्ट हो जायेंगे, अतः यहाँ से दूर चलो किन्तु मूर्खतावश अभिमान में आकर तुमने मेरी बात नहीं मानी। किसी ने ठीक ही कहा है—इस संसार में जो व्यक्ति अपने हितैषियों की बात नहीं सुनता-मानता वह दुर्बुद्धि काठ से गिरे कछुए की भांति नष्ट हो जाता है।

15

हंसद्वय और कछुए की कथा

किसी तालाब में कम्बुग्रीव नाम का कछुआ रहता था। संकट और विकट नाम के दो हंस उसके मित्र थे। वे भी स्नेहपूर्वक उसके साथ तालाब के किनारे आकर अनेक देवर्षियों की कथाएँ कहते और सायंकाल में अपने-अपने स्थान पर सोने चले जाते थे। कुछ समय बीत जाने पर वर्षा न होने के कारण तालाब धीरे-धीरे सूखने लगा। अब उसके दुःख से दुःखित उन दोनों हंसों ने कहा—मित्र ! इस तालाब में अब तो कीचड़ मात्र ही शेष रह गया है। अतः अब आपका क्या होगा। यह सोच-सोच कर हमारा हृदय अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। यह सुनकर कम्बुग्रीव ने कहा मित्र ! इस समय जल न रहने के कारण इस तालाब में अब मैं रह न सकुँगा।

अतः कोई उपाय सोचिए क्योंकि कहा भी गया है—समय के प्रतिकूल हो जाने पर भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि धैर्य धारण करने से कदाचित् विपत्ति से पार पाने का रास्ता निकल ही आएगा। समुद्र में जहाज के टूट जाने पर भी उस पर यात्रा करने वाले यात्री किसी न किसी प्रकार समुद्र को पार करने की अभिलाषा से कोशिश तो करते ही हैं। भगवान् मनु ने भी कहा है विपत्ति आ जाने पर बुद्धिमान् मनुष्यों को मित्रों तथा बान्धवों के लिए सर्वदा यत्नपूर्वक उद्योग-परिश्रम करना चाहिए।

इसलिए कोई मजबूत रस्सी अथवा छोटा लकड़ी का टुकड़ा ले आइए और जल से भरे तालाब की खोज कीजिए। मैं उस लकड़ी के मध्य भाग को अपने दाँतों से पकड़ लूँगा और तुम दोनों उसके दोनों किनारों को पकड़कर मुझे अपने साथ उस तालाब के किनारे ले चलो। उन दोनों ने कहा—मित्र ! ऐसा ही करेंगे। लेकिन आप चुप्पी साधकर मुँह न खोलना, नहीं तो लकड़ी से नीचे गिर जाइएगा।

ऐसा तय हो जाने पर लकड़ी के मध्य भाग में स्थित कम्बुग्रीव ने

नीचे की ओर पृथ्वी पर स्थित किसी नगर को देखा। वहाँ के नागरिक उसे इस प्रकार ले जाते हुए देखकर आश्चर्य से कहने लगे—अरे, देखो तो सही, चक्के जैसी कोई गोल वस्तु दो पक्षी लिए जा रहे हैं। उनका कोलाहल सुनकर कम्बुग्रीव ने कहा—अरे ! यह कैसा कोलाहल हो रहा है। ज्यों ही उसने यह कहने के लिए मुँह खोला कि अपनी आधी बात कहते ही पृथ्वी पर गिर पड़ा और लोगों ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अतः अपना भला चाहने वालों को अपने साथी बन्धुओं की बात माननी चाहिए।

16

मत्स्यत्रय कथा

किसी सरोवर में अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति और यद्भविष्य नाम की तीन मछलियाँ रहती थीं। एक बार वहाँ से गुजरते हुए कुछ मछुआरों ने उस तालाब को देखकर, आपस में एक दूसरे से कहा—अरे, यह तालाब तो बहुत मछलियों से भरा हुआ है। हम लोगों ने कभी इसकी खोज नहीं की। आज के लिए तो पर्याप्त भोजन सामग्री मिल चुकी है। सन्ध्या भी हो चुकी है। अतः कल प्रातःकाल यहाँ अवश्य ही आयेंगे।

अपने विनाश की यह वाणी सुनकर अनागतविधाता ने सभी मछलियों को बुलाकर कहा—मछुआरों ने जो कुछ कहा है उसे आप लोगों ने भी सुना होगा। अतः रात में ही समीप के किसी सरोवर में चलो क्योंकि कहा भी गया है कि—अपने से बलवान् शत्रु से बचने के लिए भाग जाना चाहिए अथवा दुर्ग का आश्रय ले कर छिप जाना चाहिए क्योंकि निर्बलों को सबलों से बचने के लिए इन दो उपायों के अतिरिक्त कोई तीसरा उपाय नहीं है। यह बात मेरे मन में बैठ गई है कि निश्चित रूप में वे मछुआरे प्रातः काल यहाँ आकर हम सभी मछलियों का नाश कर देंगे। अतः अब यहाँ क्षण भर भी ठहरना उचित नहीं है।

अनागत विधाता की यह बात सुनकर प्रत्युत्पन्नमति ने कहा—हे मित्र ! आपका कथन सत्य है। यही मेरा भी मत है यहाँ से अन्यत्र चलना चाहिए। यह सुनकर यद्भविष्य ने ठठाकर हँसते हुए कहा—आपने इस विषय पर भली प्रकार से विचार नहीं किया। क्या मछुआरों के कथन से अपने बाप-दादा आदि की निवास भूमि को छोड़ देंगे। यदि आयु पूरी हो ही गई है तो वहाँ जाने पर भी मृत्यु हो सकती है। कयोंकि कहा भी गया है—अरक्षित होते हुए भी दैव-विधाता-भाग्य से रक्षित होने पर, व्यक्ति बचा रहता है अर्थात् उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। किन्तु अत्यन्त सुरक्षित होने पर भी दैव-विधाता द्वारा मारा हुआ किसी भी प्रकार

बच नहीं सकता। यही कारण है कि वन में छोड़ा हुआ अनाथ व्यक्ति तो बच जाता है किन्तु प्रयत्न करने पर भी सनाथ व्यक्ति घर पर भी मर जाता है, अतः मैं नहीं जाऊँगा। आप दोनों जैसा चाहे वैसा करें।

यद्भविष्य मच्छली के इस निश्चय को जानकर अनागत विधाता और प्रत्युपन्नमति अपने-अपने परिवारों के साथ वहाँ से चले गए। इसके पश्चात् प्रातः काल उन मछुआरों ने जाल से उस तालाब को मथकर यद्भविष्य के साथ ही उस तालाब को मछलियों से रहित कर दिया। अतः आने वाली विपत्ति के लिए पहले से ही प्रबन्ध कर लेने से ही व्यक्ति सुरक्षित रहता है। 'जो कुछ होगा देखा जायेगा' की लापरवाही वाली आदत से व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

17

चटक कुञ्जर कथा

किसी वन में गौरेये का एक जोड़ा तमाल वृक्ष पर घोंसला बनाकर रहता था। कुछ समय बीतने पर उनके सन्तान उत्पन्न हुई। एक दिन एक मतवाला हाथी धूप से व्याकुल होकर छाया पाने के लिए उसी तमाल वृक्ष के नीचे आया। मदोन्मत्त होने के कारण उसने उस वृक्ष की उसी शाखा को अपनी सूंड से खींचकर तोड़ डाला, जिस पर गौरेया ने अण्डे दिये थे। उसके टूट जाने से गौरेया के सभी अण्डे टूट-फूट गए। आयु शेष रहने के कारण नर-मादा गौरेया बच गए। मादा गौरेया (चटका) अण्डों के फूट जाने से व्याकुल होकर किसी भी प्रकार शान्ति नहीं पा रही थी। इसी बीच उसके विलाप को सुनकर उसका घनिष्ट मित्र काष्ठकूट कठफोड़वा वहाँ आया और उससे कहने लगा—देवी ! व्यर्थ विलाप करने से क्या लाभ ?

गौरेया (चटका) ने कहा—वह तो ठीक है किन्तु दुष्ट हाथी ने मदोन्मत्त होकर मेरी सन्तान का विनाश कर डाला है। इसलिए यदि तुम मेरे सच्चे मित्र हो तो इस नीच हाथी को मारने का कोई उपाय सोचो जिसे करने से सन्तान नाश से उत्पन्न मेरी पीड़ा दूर हो।

काष्ठकूट ने कहा आपने सच ही कहा है कि सच्चा मित्र वही है जो विपत्ति में सहायक होता है, यों तो ऐश्वर्य दशा में सभी मित्र बन जाते हैं। अच्छा तो अब मेरी बुद्धि का प्रभाव देखो। वीणारव नाम वाली एक मक्खी मेरी मित्र है। मैं उसे बुलाकर लाता हूँ जिससे वह दुष्ट हाथी मारा जा सके।

तब काष्ठकूट उस चटका के साथ मक्खी के पास जाकर बोला—भद्रे! यह मेरी प्रिय मित्र चटका है। किसी दुष्ट हाथी ने इनके अण्डों को फोड़कर इन्हें अत्यधिक दुःखी बना दिया है। अतः तुम्हें उनके वध के उपाय में मेरी मदद करनी होगी। मक्खी ने कहा—यदि मैंने मित्र के हित

का कार्य नहीं किया तो उचित नहीं है। अतः मित्र की सहायता के लिए मेघनाद नामक मेंढ़क जो मेरा मित्र है उससे मिलकर मन्त्रणा करते हैं और फिर जो उचित होगा वही करेंगे।

उसके बाद उन तीनों ने वहाँ जाकर मेघनाद मेंढ़क को सारा वृतान्त सुनाया। मेंढक ने कहा—जब हम लोग संघ बना लेंगे तो हम लोगों के सामने वह क्षुद्र हाथी टिक नहीं पायेगा। इसके लिए आप लोग मेरी राय के अनुसार काम कीजिए। हे मक्खी ! तुम कल दोपहर को जाकर उस हाथी के कान में वीणा की ध्वनि के समान शब्द करो। जिससे कि वह श्रवण सुख की लालसा में आँखे मूंद लेगा। उस समय कठफोड़वा अपनी चोंच से उसकी आँखे फोड़ देगा। इसके पश्चात् जब वह अन्धा होकर प्यास से व्याकुल होकर जलाशय पर जल पीने जायेगा तो पास वाले गड्ढे में हम मेढ़कों का शब्द सुनकर उसे जलाशय समझकर उसी गड्ढे में गिर जायेगा और दलदल में फंस कर मर जायेगा। संघ बनाकर काम करने से सभी काम सध जाते हैं।

इसके पश्चात् मेघनाद की राय के अनुसार वैसा करने पर हाथी ने उस मक्खी के गीत के सुख में अपनी आँखे बन्द कर लीं। तभी कठफोड़वा ने उसकी आँखें फोड़ दीं। इसके बाद दोपहर को प्यास से व्याकुल हो जब जलाशय की ओर मेंढकों की आवाज का अनुसरण करता हुआ उस गड्ढे के पास पहुँचा तो उस दलदल में फंसकर मर गया।

इस कथा से यह स्पष्ट है कि संगठन में ही शक्ति है । छोटे से छोटा व्यक्ति भी अन्य लोगों से मिलकर काम करे तो बड़े से बड़ा काम कर सकता है जैसा कि कहा भी गया है—एकता में बल है। साथ ही, मित्र वही है जो विपत्ति में काम आए। विपत्ति में काम आने वाला ही सच्चा मित्र है।

पयःपानं हि भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्

18

सूचीमुख तथा वानर समूह की कथा

किसी पहाड़ के एक हिस्से में वानरों का झुण्ड रहता था। वह किसी समय हेमन्त ऋतु में अत्यन्त ठण्डी हवा से काँपते हुए शरीर के कारण तथा हिम की वर्षा के समान अत्यन्त तीव्र मूसलाधार जलवृष्टि के कारण अत्यन्त पीड़ित होकर किसी भी प्रकार ठण्ड से शान्ति नहीं पा रहा था।

कुछ बन्दर आग की चिंगारी के समान लाल-लाल गुञ्जाफलों को एकत्रित करके आग जलाने की इच्छा से फूँक मारते हुए उसके चारों ओर बैठे हुए थे। उन वानरों के इस व्यर्थ के प्रयत्न को देखकर सूचीमुख नामक एक पक्षी ने कहा—अरे तुम सभी मूर्ख हो। यह आग की चिंगारियाँ नहीं हैं, यह गुञ्जाफल है। व्यर्थ क्यों परिश्रम करते हो। इसके द्वारा शीत से रक्षा नहीं होगी। इसलिए कोई ऐसा वन प्रदेश, गुफा या पहाड़ की खोज करो जहाँ हवा न लग सके। आज घने बादलों की घटा भी छाई हुई दीख पड़ रही है।

तब उनमें एक बूढ़े वानर ने कहा—अरे मूर्ख ! तू व्यर्थ ही यह उपदेश क्यों दे रहा है, यहाँ से चले जाओ। लेकिन सूचीमुख भी बार-बार अनादर पूर्वक बन्दरों को यही कहता रहा कि बेकार कष्ट क्यों उठाते हो ? इस प्रकार जब किसी प्रकार सूचीमुख चुप नहीं हुआ तो बेकार के परिश्रम से क्रुद्ध हुए वानर ने उसके पंखों को पकड़ कर पत्थर की चट्टान पर पटक दिया जिससे वह पक्षी मर गया। अतः यह सीख हमें ध्यान में रखनी चाहिए कि न झुकने वाली सूखी लकड़ी कभी नहीं झुकती-मुड़ती है, पत्थर को छुरे की धार से काटा नहीं जा सकता और उपदेश के अयोग्य शिष्य को उपदेश नहीं दिया जा सकता। और भी—मूर्खों को दिया गया उपदेश क्रोध को बढ़ाने वाला होता है, शान्ति देने वाला नहीं। जैसे साँप को दूध पिलाना उनके विष को बढ़ाने वाला ही होता है।

19

चटक दम्पती और वानर कथा

किसी वन प्रदेश में एक शमी का वृक्ष था। उसकी लम्बी शाखा पर गौरा पक्षी (चटक) का जोड़ा रहता था। एक बार वे आनन्द के साथ अपने घोंसले में बैठे हुए थे कि जाड़े की ऋतु का बादल धीरे-धीरे बरसने लगा। इसी बीच वायु के झोंके से युक्त वर्षा से पीड़ित कोई बन्दर काँपते हुए शरीर से, दाँतों को कटकटाता हुआ उसी शमी वृक्ष के नीचे आकर बैठ गया। तब उसे ऐसी दशा में देखकर चटका ने कहा—तुम तो हाथ पैर से युक्त पुरूष जैसी आकृति वाले दिखाई पड़ते हो। फिर शीत में कष्ट क्यों उठा रहे हो ? अरे मूर्ख ! अपने रहने के लिए घर क्यों नहीं बना लेते हो ?

उस चटका से यह सुनकर बन्दर ने क्रोधपूर्वक कहा—नीच ! चुप क्यों नहीं रहती है। इसकी यह ढ़िटाई कि यह मेरी हंसी भी उड़ा रही है। सूई जैसी मुख वाली (चुभने वाली बात बोलने वाली) दुराचारिणी, धूर्त, तथा अपने को पण्डिता मानने वाली इस प्रकार बड़बड़ाती हुई मुझसे जरा भी नहीं डर रही है तो इसे क्यों न मार डालूँ ?

इस प्रकार उसने सोचकर कहा—अरी भोली ! तुझे मेरी चिन्ता से क्या मतलब है ? क्योंकि यदि कोई पूछे और वह भी विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक पूछे तो ही उससे बात करनी चाहिए किन्तु श्रद्धाहीन व्यक्ति से बातें करना तो जंगल में रोने के समान व्यर्थ है। सो अधिक कहने से क्या लाभ?

घोंसले में बैठी हुई चटका ने ज्योंहिं उससे फिर वही बात कही, त्यों ही उस बन्दर ने उस शमी वृक्ष पर चढ़कर उसके घोंसले के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। इसलिए मूखोंर् को उपदेश नहीं देना चाहिए—उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

20

धर्मबुद्धि–पापबुद्धि कथा

किसी स्थान पर धर्मबुद्धि और पापबुद्धि नाम वाले दो मित्र रहते थे। एक बार पापबुद्धि ने विचार किया कि एक तो मैं मूर्ख हूँ और दूसरे दरिद्र भी। इसलिए इस धर्मबुद्धि को लेकर किसी दूसरे देश जाकर, इसके सहारे धन पैदा कर और फिर इसे धोखा देकर सुखी हो जाऊँ।

कुछ दिन पश्चात् पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा–मित्र ! तुम बुढ़ापे में अपने किए हुए कार्य का स्मरण करोगे। जिसने दूसरे देशों में घूम-घूम कर विभिन्न प्रकार की भाषा तथा भूषा का ज्ञान प्राप्त नहीं किया उसका पृथ्वी पर जन्म लेना ही निष्फल है। तब उसके वह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मन से धर्मबुद्धि के साथ उसने बड़ों की आज्ञा लेकर एक शुभ मुहूर्त में दूसरे देश के लिए प्रस्थान किया। वहाँ इधर-उधर घूमते हुए पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि के प्रभाव से बहुत अधिक धन कमा लिया। बहुत धन कमाने से प्रसन्न मन वाले दोनों ने घर लौटने का निश्चय किया। घर के पास पहुँचने पर पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा–भद्र ! यह सब धन घर ले चलना उचित नहीं है क्योंकि परिवार और जाति-बिरादरी के बन्धुजन उसे माँगने लगेंगे। इसलिए इसे इसी घने जंगल में कहीं भूमि में गाड़ कर थोड़ा सा ही लेकर घर चलें फिर काम पड़ने पर जितने की आवश्यकता होगी उतना ही आकर ले लेंगे। बुद्धिमान् को अपना थोड़ा सा भी धन किसी को नहीं दिखाना चाहिए क्योंकि उसे देखकर उस धन को लेने के लिए उनका मन लालायित हो उठता है।

यह सुनकर धर्मबुद्धि ने कहा–भद्र ! ऐसा ही करो। तब भूमि में धन को गाड़ कर दोनों अपने-अपने घर चले गए और सुखपूर्वक रहने लगे। फिर कुछ दिन बाद पापबुद्धि ने आधी रात के समय जंगल में जाकर सारा धन ले लिए और गड्ढा ज्यों का त्यों दबा दिया और घर लौट

आया। फिर दूसरे दिन धर्मबुद्धि के पास जाकर पापबुद्धि ने कहा कि—मित्र, मैं बहुत बड़े परिवार वाला हूँ और मुझे धन की कमी से कष्ट हो रहा है। अतः चलो उस स्थान पर चलकर थोड़ा सा धन ले आएँ। धर्मबुद्धि ने कहा—अच्छा, चलो।

इसके बाद दोनों ने वहाँ जाकर जब उस स्थान को खोदा तो स्थान को खाली पाया। तभी पापबुद्धि ने सिर पीटते हुए कहा—अरे धर्मबुद्धि ! तूने इस धन को चुराया है क्योंकि तूने ही धन निकाल कर गड्ढे को फिर से भर दिया है क्योंकि यदि चोर चुराता तो फिर गड्ढ़ा नहीं भरता। इसलिए मुझे इसका आधा दे दो, नहीं तो मैं राजा के दरबार में निवेदन करूँगा। यह सुनकर धर्मबुद्धि ने कहा अरे पापबुद्धि ! ऐसा मत कहो, मैं धर्मबुद्धि हूँ, मैं ऐसा पापकृत्य नहीं करता।

इस प्रकार दोनों झगड़ते हुए धर्माधिकारी के पास पहुँचकर एक-दूसरे को दोषी ठहराते हुए उनसे अपनी-अपनी बात कहने लगे। जब न्यायालय के न्यायधीशों ने उन दोनों को शपथ लेने को कहा तो पापबुद्धि ने कहा यह न्याय तो उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि राजनीति के विद्वानों के द्वारा कहा भी गया है कि किसी विषय में विवाद हो जाने पर पहले लेखपत्र की छानबीन की जाती है, उसके न मिलने पर साक्षी-ग़वाह खोजे जाते हैं और जब गवाह भी नहीं मिलते तब शपथ करवाया जाता है।

इस विषय में यह वृक्ष देवता हमारे गवाह हैं। वे ही हम दोनों में से किसी एक को चोर या साधु सिद्ध करेंगे। तब उन सभी राजपुरूषों ने कहा आपने उचित ही कहा है। हम लोगों की भी इस विषय में बड़ी उत्सुकता है। प्रातः काल तुम दोनों वहाँ जंगल में चलना।

घर जाकर पापबुद्धि ने अपने पिता से समस्त वृतान्त कहा कि मैने धर्मबुद्धि का बहुत सा धन गड्ढे से निकाल लिया है, वह बच जायेगा, अन्यथा मेरे प्राणों के साथ चला जायेगा। यदि आप वहाँ स्थित शमी वृक्ष के खोखले में घुस कर बैठ जाओ और प्रातः जब तुम्हें सत्य कहने को कहा जायेगा तो आप कहना धर्मबुद्धि चोर है। ऐसा तय करके पिता को रात्रि में ही वृक्ष की खोह में ही छिपाकर प्रातः स्नान करके पापबुद्धि

ने धर्मबुद्धि को आगे करके धर्माधिकारी के साथ, उसी शमी वृक्ष के पास पहुँचकर उच्च स्वर से कहा—

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यम, दिन-रात और दोनों सन्ध्यायें तथा धर्म मनुष्य के चरित्र को जानते हैं। हे भगवती ! वन देवते ! हम दोनों में से जो चोर हो उसे कहो।

इसके पश्चात् शमीं वृक्ष के खोखले में बैठे हुए पापबुद्धि के पिता ने कहा—यह धन धर्मबुद्धि ने चुराया है। यह सुनकर सभी राजपुरूषों की आँखें आश्चर्य से खुली रह गईं। वे सब धन चुराने के लिए शास्त्रानुसार धर्मबुद्धि के लिए उचित दण्ड के बारे में अभी विचार कर ही रहे थे कि धर्मबुद्धि ने शमी वृक्ष के चारों तरफ घास-फूस लकड़ी आदि एकत्रित कर उसमें आग लगा दी।

वृक्ष के खोखले में आग की लपटों और धुएँ से अधजले शरीर वाला तथा धुँए के कारण फूटी आँखों वाला पापबुद्धि का पिता, करूण विलाप करता हुआ निकला। तब वहाँ उपस्थित सभी राजपुरूषों ने पूछा कि यह सब क्या है ? कैसे हुआ ? तब पापबुद्धि के पिता ने कहा—यह सब कुकर्म पापबुद्धि के कारण हुआ है और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया। तत्पश्चात् उन धर्माधिकारियों ने पापबुद्धि को भी उसी शमीवृक्ष की शाखा पर लटका दिया और धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहा—बुद्धिमान् व्यक्ति को किसी प्रकार का उपाय करने के साथ ही उससे होने वाली विपत्तियों को भी सोच लेना चाहिए।

21

बगुले और नेवले की कथा

किसी जंगल में एक बरगद का वृक्ष था जिस पर बहुत से बगुले रहा करते थे। उसी वट वृक्ष की खोह-खोखले में काला साँप रहता था। वह सर्प बगुले के, अभी पँख निकलते हुए, छोटे बच्चों को खा जाता था और इस प्रकार अपना जीवन निर्वाह करता था।

तब एक बार एक बगुला जो अपने बच्चों के खाए जाने के कारण उदास था, वह तलाब के किनारे मुँह लटकाए, आँसु आँखों में भरा हुआ बैठा था। उसको इस प्रकार बैठा देखकर कुलीरक नामक एक केंकड़े ने उससे पूछा—मामा ! आज आप इस तरह क्यों रो रहे हो ? बगुले ने कहा—भद्र ! क्या करूँ मुझ भाग्यहीन के बच्चों को खोखले में रहने वाला साँप खा जाता है। उसी दुःख से दुःखी होकर मैं रो रहा हूँ। इसलिए यदि उसके विनाश का कोई उपाय हो तो मुझे बताओ।

यह सुनकर कुलीरक केंकड़े ने विचार किया—यह मेरी जाति का स्वाभाविक शत्रु है। इसलिए इसे ऐसा झूठा-सच्चा उपदेश देता हूँ कि इसके साथ ही दूसरे सभी बगुलों का भी नाश हो जाए। कहा भी गया है—वाणी को मक्खन जैसा कोमल तथा ह्रदय को पत्थर सा कठोर बनाकर शत्रु को इस प्रकार समझाना चाहिए जिससे वह अपने कुल के साथ नष्ट हो जाए। यह सोचकर केंकड़े ने कहा—मामा ! यदि ऐसा है तो मछली के माँस के टुकड़ों को नेवले के बिल के द्वार से साँप के खोखले तक डाल दो। जिससे नेवला उस मार्ग से जाकर साँप को मार डालेगा।

यह जानकर बगुले ने वैसा ही किया। ऐसा किए जाने पर मछली के माँस का अनुसरण करने वाले नेवले ने उस काले साँप को मार डाला और धीरे–धीरे उस वृक्ष पर रहने वाले सभी बगुलों को भी खा लिया। बगुले ने कृष्ण सर्प से अपनी रक्षा का उपाय तो सोचा लेकिन इससे

होने वाली हानि को नहीं सोचा कि जो नेवला सांप का वैरी है उसे खायेगा उसी प्रकार अपने भोजन के लिए वह बगुलों को भी नहीं छोड़ेगा और उन्हें भी खा जायेगा। अतः विद्वान् जैसे उपाय सोचे वैसे ही साथ-साथ होने वाली अन्य हानियाँ भी सोचे।

22

जीर्णधन वणिक् पुत्र और लोहे की तराजु की कथा

किसी गाँव में जीर्णधन नाम का एक बनिए का लड़का था। उसने सम्पत्ति के नष्ट हो जाने के कारण विदेश में जाने की सोची। उसके घर में पूर्वजों की कमाई की बहुत भारी लोहे की तराजु थी। वह उसे किसी सेठ के घर में धरोहर रख कर दूसरे देश में चला गया और इच्छापूर्वक विभिन्न देशों का भ्रमण करके वापिस आकर सेठ से कहा—हे सेठ जी ! वह धरोहर में रक्खी मेरी तराजु दो। सेठ ने कहा—अरे, तुम्हारी वह तराजु तो चूहों ने खा ली। यह सुन जीर्णधन ने कहा—अरे सेठ जी ! यदि चूहों ने खा डाला है लोहे की तराजु को तो इसमें आपका कोई दोष नहीं। यह संसार ही ऐसा है यहाँ कोई भी वस्तु-व्यक्ति नहीं टिकता। अभी तो मैं नदी पर स्नान के लिए जाना चाहता हूँ। अतः तुम इस धनदेव नामक बेटे को स्नान की सामग्री देकर मेरे साथ भेज दो।

सेठ ने भी चोरी के इलजाम के भय से अपने पुत्र को उसके साथ भेज दिया। क्योंकि भय, लोभ या अन्य किसी प्रयोजन से ही कोई मनुष्य श्रद्धा से किसी का भला करता है। यदि बिना प्रयोजन के किसी का सम्मान हो रहा है तो वहाँ निश्चित रूप से सन्देह करना चाहिए क्योंकि उस सम्मान का परिणाम दुःखदायी होता है।

इसके पश्चात् उस सेठ का लड़का स्नान की सामग्री लेकर प्रसन्नचित्त से उस अतिथि के साथ चल दिया। उस अतिथि रूप बनिए ने स्नान करके तथा उस बच्चे को पास की एक गुफा में छिपाकर उसके द्वार को पत्थर की चट्टान से बंद कर दिया और वापिस लौटकर सेठ को बताया कि वापिस लौटते हुए तुम्हारे पुत्र को बाज उठाकर ले गया। सेठ ने कहा अरे असत्यवादी ! क्या बाज बच्चे का अपहरण कर सकता है? अतः मेरा पुत्र मुझे वापिस दो नहीं तो राजदरबार में निवेदन करूँगा।

तब उस बनिए ने कहा अरे सत्यवादी ! जैसे बाज बालक को नहीं ले जा सकता वैसे ही चूहे लोहे की तराजु नहीं खा सकते। इसलिए यदि अपना पुत्र पाना चाहता है तो मेरी तराजु मुझे वापिस दे दो।

इस प्रकार दोनों विवाद करते हुए राजा के दरबार में गए। वहाँ सेठ ने उच्च स्वर से कहा—यह तो बड़ा अनर्थ है, इस चोर ने मेरे पुत्र का अपहरण कर लिया है। धर्माधिकारियों ने कहा—दुष्ट ! इस सेठ का बच्चा दे दो। उस वणिक् ने कहा—मैं क्या करूँ ? मेरी आँखों के सामने ही नदी-किनारे से बाज ने उस बालक का अपहरण कर लिया। धर्म अधिकारियों ने कहा तुम झूठ बोलते हो। भला बाज भी बालक को उठाकर उड़ सकता है ? तब उस वणिक् ने विस्तार से कहा—यदि हजार पल वजन की लोहे की तराजु को चूहे खा सकते हैं वहाँ बाज भी बच्चे का अपहरण कर सकता है। इससे पूर्व का समस्त वृतान्त उसने विस्तार से बता दिया। तब धर्माधिकारियेां ने हँसते हुए दोनों को समझा-बुझा कर एक दूसरे को तराजु और बालक दिलवा कर सन्तुष्ट कर दिया।

23

मूर्ख सेवक बन्दर और राजा की कथा

किसी राजा के पास उस की देखभाल करने वाला अत्यन्त स्वामीभक्त, बन्दर, सेवक के रूप में रहता था। एक बार रात में राजा के सो जाने पर वानर उसे पंखा झल रहा था कि इसी बीच राजा की छाती पर एक मक्खी बैठ गई। वह पंखे से बार-बार उड़ाने-हटाने से भी फिर वहीं आकर बैठ जाती थी। तब स्वभाव से चंचल एवं मूर्ख वानर ने क्रोध में आकर तेज तलवार से, जो राजा के सिरहाने ही लटक रही थी, जोर से मक्खी पर प्रहार कर दिया। मक्खी तो उड़ गई लेकिन तेज धार वाली उस तलवार से राजा की छाती के दो टुकड़े हो गए और राजा मर गया। अतः अपना कुशल चाहने वाले स्वामी को मूर्ख सेवक कदापि नहीं रखना चाहिए। विद्वान् शत्रु भी अच्छा है न कि मूर्ख सेवक या मित्र—**पण्डितो पि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः।**

24

चोर ब्राह्मण कथा

किसी नगर में कोई बहुत बड़ा विद्वान् ब्राह्मण रहता था, जिसमें पूर्व जन्म के संस्कार वश चोरी की आदत थी। एक बार उसके नगर में दूसरे देश से चार ब्राह्मणों को कुछ वस्तुएँ बेचते हुए देखकर उसने सोचा—किस उपाय से इनका धन ले लूँ। इस प्रकार उसने विचार करके उनके सामने शास्त्रों में कही गई अनेक प्रकार की सुभाषित उक्तियों और मधुर बातों को कह कर उनके मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके उनकी सेवा, आवभगत करने लगा।

इसके बाद उन ब्राह्मणों ने अपनी वस्तुएँ बेच कर प्राप्त धन से बहुमूल्य रत्न खरीदे और उस चोर ब्राह्मण के सामने अपनी जांघों में रखकर अपने देश जाने को उद्यत हुए। तब वह धूर्त ब्राह्मण उन ब्राह्मणों को जाने के लिए उद्यत देखकर बहुत चिन्तित एवं व्याकुल हो उठा कि यह धन मेरे हाथ किसी प्रकार प्राप्त हो सके। अतः मैं भी इनके साथ चलुँ और मार्ग में इन्हें विष देकर, मार कर इनके सारे रत्न ले लूँ।

यह सोचकर उनके सामने करूणापूर्वक विलाप करते हुए कहा—हे मित्रों ! तुम मुझे अकेला छोड़कर जाने के लिए उद्यत हो। आप लोगों के स्नेह बन्धन से बंधा मेरा मन आप लोगों के विरह से इतना व्याकुल हो रहा है कि किसी भी प्रकार धैर्य धारण नहीं कर पा रहा है। अतः आप मुझे भी साथ ले चलें।

उसकी बातें सुनकर वे ब्राह्मण भी करूणा से भर कर उसको साथ ले चलने को तैयार हो गए। मार्ग में जब वे पल्लीपुर ग्राम के पास पहुँचे तो कौवे ने इस प्रकार चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया—अरे भीलो ! दौड़ो-दौड़ो सवा लाख के धनी जा रहे हैं। इसको मार कर धन ले लो।

कौवे की वाणी सुनकर भीलों ने वहाँ शीघ्रता से पहुँचकर लाठियों से प्रहार से उन्हें बेहाल कर दिया और उनके कपड़े उतार कर देखा लेकिन जब कुछ धन प्राप्त नहीं हुआ तब उन्होंने कहा पथिकों ! इस कौवे की वाणी पहले कभी असत्य नहीं हुई है। इसलिए तुम लोगों के पास जो भी धन है इसे दे दो नहीं तो सबको मार कर चमड़ी फाड़ कर सभी अंगों को देखकर हम सभी धन ले लेंगे।

तब उन भीलों की ऐसी बातें सुनकर चोर ब्राह्मण के मन में विचार आया कि यदि इन ब्राह्मणों को मार कर ये सभी रत्न ले लेंगे तो साथ में मुझे भी मार डालेंगे। इसलिए पहले ही रत्न रहित अपने तन को अर्पित करके इनको छुड़ा लेता हूँ। मौत से क्या डरना। क्योंकि आज नहीं तो सौ वर्षों में मृत्यु कभी न कभी तो होनी है और यदि गौ-ब्राह्मणों आदि के लिए प्राणदान दिया जाय तो परमगति प्राप्त होती है। ऐसा निश्चय करके उसने भीलों से कहा हे भीलों ! यदि ऐसी बात है तो पहले मुझे मार कर देख लो। तब उन्होंने वैसा ही करके उसे धन से रहित पाकर उन चारों ब्राह्मणों को छोड़ दिया। अतः मूर्ख सेवक या मित्र की अपेक्षा विद्वान् शत्रु ही अच्छा है।

वित्तजो ऊष्मा देहिनां तेजो वृद्धिं नयति

25

हिरण्यक और ताम्रचूड की कथा

दक्षिण भारत में महिलारोप्य नामक नगर है। वहाँ भगवान् शंकर का एक मन्दिर है। वहाँ ताम्रचूड नाम का एक सन्यासी रहता था। वह नगर में भीख माँगकर अपनी जीविका चलाता था। बचे हुआ अन्न को वह भिक्षा पात्र में रखकर खूंटी पर लटका देता था और प्रातः काल उसी अन्न को देकर सेवकों से देवमन्दिर में झाडु-पौंछे का काम करवाता था।

एक दिन चूहों ने मूषकाधिपति हिरण्यक से कहा—इस मन्दिर में पका हुआ अन्न चूहों के भय से भिक्षा पात्र में रक्खा हुआ खूंटी से लटका रहता है। अतः उसे हम खा नहीं पाते हैं। हे स्वामी ! आपके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं है। अन्य स्थानों पर भोजन के लिए घूमने से क्या लाभ ? आज रात वहाँ आपकी कृपा से हम इच्छानुसार भोजन करें। यह सुनकर चूहों का स्वामी अपने पूरे झुण्ड के साथ वहाँ पहुँच गया और कूद कर उस भिक्षापात्र पर चढ़ गया। इस प्रकार हिरण्यक नित्यप्रति भिक्षापात्र में रक्खे विशेष भोज्य पदार्थों को अपने सेवकों को देकर बाद में खुद खाता था और सबके सन्तुष्ट हो जाने पर घर लौट जाता था। सन्यासी भी भिक्षापात्र की यथाशक्ति रखवाली करता था। लेकिन ज्यों ही वह सन्यासी सो जाता था तो चूहों का स्वामी हिरण्यक भिक्षापात्र पर चढ़कर इच्छानुसार भोजन करता और सभी चूहों को भी करवाता था।

चूहों के उत्पात् से बचने के लिए एक दिन वह सन्यासी फटा हुआ बाँस लाया और सोते हुए भी बीच-बीच में भिक्षापात्र पर पटक-पटक उसकी आवाज से चूहों को डराता था। चूहे भी प्रहार के भय से अन्न नहीं खा पाते थे। इस प्रकार सारी रात चूहों से लड़ाई और भोजन रक्षा में उस सन्यासी की बीतती थी।

एक दिन उस मन्दिर में उस ताम्रचूड सन्यासी का मित्र बृहत्स्फिक्

तीर्थ यात्रा प्रसंग में घूमते-घूमते वहाँ आया। उसे देखकर उसने उठकर स्वागत किया और आदर भाव से अतिथि सत्कार किया। इसके बाद रात्रि में एक ही कुशा के बिछौने पर लेटे-लेटे ही धर्म चर्चा करने लगे। बृहत्स्फिक् से बातचीत करने के समय भी वह ताम्रचूड़, चूहों को भगाने के लिए, उस फटे बाँस से भिक्षापात्र को पीटता रहता था और दूसरी ओर ध्यान होने से अनमने ढंग से निरर्थक उत्तर दिया करता था और चूहों को डराने में लगा होने के कारण वह स्वयं भी कुछ भी नहीं कहता था।

इससे वह अतिथि क्रुद्ध हो गया और उसने ताम्रचूड से कहा—हे ताम्रचूड ! मैंने भली भांति समझ लिया है कि तुम मेरे मित्र नहीं हो, इसलिए मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बातचीत नहीं कर रहे हो। अतः अभी इसी रात में मैं तुम्हारे मठ को छोड़कर दूसरे मठ में चला जाऊँगा। तुम तो एक ही मठ के पाने से इतने अभिमानी बना गए हो कि मित्र के प्रेम को भी छोड़ बैठे हो। क्या तुम यह जानते-समझते हो कि तुमने मठ की प्राप्ति नहीं अपितु नरकोपार्जन कर लिया है। हे मूर्ख ! अभिमानी बन कर तुम शोचनीय बन गए हो। इसलिए मैं तुम्हारे मठ को छोड़कर जा रहा हूँ।

यह सुनकर भयभीत मन से ताम्रचूड़ ने कहा—हे भगवन् ! ऐसा मत कहिए। तुम्हारे समान दूसरा कोई मेरा मित्र नहीं है। बातचीत में मेरी ओर से होने वाली शिथिलता का कारण सुनिए—यह दुष्ट चूहा ऊँचे स्थान पर रक्खे हुए अन्न को खा जाता है और उसके अभाव में मठ में झाडु-सफाई का काम ठीक से नहीं हो पाता है। इसलिए चूहे को भयभीत करने के लिए इस बाँस से मैं भिक्षापात्र को बार-बार पीटा करता हूँ, और कोई दूसरा कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त इस दुष्ट का यह तमाशा देखो कि इसके कूदने की क्रिया ने बिल्ली-बन्दर आदि को भी मात कर दिया है।

बृहत्स्फिक् ने पूछा—क्या तुम्हें मालुम है कि उसका बिल कहाँ पर है? ताम्रचूड़ ने कहा—भगवन् ! निश्चित रूप से नहीं जानता हूँ। उसने कहा—निश्चय ही खजाने के ऊपर उसका बिल है, खजाने की गर्मी से

कूदता है, क्योंकि कहा भी गया है—धन से उत्पन्न होने वाली गर्मी शरीर धारियों के तेज को बढ़ा देती है और फिर त्याग आदि कर्मों से संयुक्त उस धन के भोग का तो कहना ही क्या ?

यह कहकर उसने फिर पूछा—क्या उसके आने-जाने का रास्ता मालूम है ? ताम्रचूड़ ने कहा—हाँ भगवन् ! मालुम है, क्योंकि वह अकेला नहीं आता है बल्कि अनगिनत चूहों से घिरा हुआ, पूरे परिवार समूह के साथ आता है। वह मेरी आँखों के सामने ही इधर-उधर घूमता हुआ सबके साथ आता है और चला जाता है। बृहत्स्फिक् ने पूछा—खोदने के लिए कोई वस्तु है क्या ? उसने कहा हाँ है। यह लोहे की बनी हुई कुदाली है। अतिथि ने कहा—तो तुम बहुत सवेरे उठ जाना ताकि हम दोनों, लोगों के आने जाने से भूमि मलिन होने से पहले ही, लोगों के चरण चिह्नों से, चूहों के चरण चिह्नों के मिटने से पहले ही उनके पैरों के निशानों का अनुसरण करते हुए चलेंगे। चूहों के प्रमुख ने उनकी बात सुनकर सोचा कि अब तो मेरा विनाश निश्चित ही है जैसे इसने मेरे खजाने को जान लिया है वैसे ही यह मेरे बिल रूपी दुर्ग को भी जान लेगा, पता लगा लेगा।

तब चूहा भयभीत हृदय से अपने परिवार के साथ बिल रूपी किले के मार्ग को छोड़कर दूसरे रास्ते से जाने लगा। ज्यों ही वह अपने परिवार के साथ आगे की ओर चला त्यों ही एक मोटा-ताजा बिलाव सामने से गुजरा और चूहों के झुण्ड पर झपटा। इसके पश्चात् मरने से बचे हुए चूहे अपने खून से सने शरीर से पृथ्वी को सींचते हुए बिल में घुस गए। लेकिन चूहों का मुखिया कहीं और चला गया। इसी समय वह सन्यासी खून से लिप्त भूमि को देखकर बिल के रास्ते को खोजकर कुदाली से खोदने लगा। और खोदते-खोदते उसने वह खजाना प्राप्त कर लिया जिस पर चूहे कूदते थे। तब अतिथि सन्यासी ने ताम्रचूड़ से कहा—भगवन्! अब निर्भय होकर सोइए। इसकी गर्मी से ही चूहा तुम्हें रात भर जगाता था। ऐसा कहकर दोनों ही खजाने को लेकर मठ की ओर चल दिए और शेष चूहे अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए उस स्थान को छोड़कर कहीं और चले गए।

26

भील और सूअर की कथा

किसी वन प्रदेश में कोई भील शिकारी रहता था। एक बार वह शिकार करने के लिए दूर वन प्रदेश में गया वहाँ उसे भयानक आकृति वाला सूअर दिखाई दिया। उसे देखकर शिकारी ने कान तक खींचे गए धनुष से बाण मारा। तब सूअर ने क्रुद्ध होकर द्वितीया के चन्द्रमा जैसी दाड़ से शिकारी का पेट फाड़ दिया जिससे वह भील प्राणविहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसके बाद शिकारी भील के बाण प्रहार से स्वयं सूअर भी भूमि पर गिर पड़ा। सूअर और शिकारी के पाँव की रगड़ से तिरछा-आड़ा लेटा हुआ साँप भी मर गया।

इसके कुछ काल उपरान्त भूख से पीड़ित होने के कारण मरणासन्न शरीर वाला कोई गीदड़ वहाँ आया। एक साथ इतना सारा भोजन देखकर उसने विचार किया कि भाग्य मेरे अनुकूल है इसी कारण अकस्मात् ही मुझे इतना भोजन प्राप्त हो गया है। अब मैं इसे इस प्रकार खाँऊ कि बहुत दिन तक मेरी जीवन यात्रा चलती रहे। अतः आज पहले इस धनुष के सिरों से बंधी हुई ताँत की इस डोरी को ही खाऊँगा, क्योंकि कहा भी गया है कि बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने द्वारा कमाए हुए धन को रसायन की तरह धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा भोगना चाहिए। कभी भी चटपट से समाप्त नहीं कर देना चाहिए।

इस प्रकार मन में निश्चय करके ताँत से बंधे धनुष के सिरे को मुँह से ज्यों ही उसने खींचा तो ताँत के टूटने के प्रहार से गीदड़ का भी मस्तिष्क फट कर बाहर आ गया और तुरन्त मर गया। अतः अधिक लालच नहीं करना चाहिए।

27

खरगोश और गजयूथपति की कथा

किसी वन में हाथियों का स्वामी चतुर्दन्त रहता था। एक बार उस वन में बहुत वर्षों तक भारी अनावृष्टि से सभी तालाब, झील, तलैया और छोटे-बड़े सरोवर सूख गए। इसके बाद सभी हाथियों ने उस गजराज से कहा—हे राजन् ! बच्चे प्यास से व्याकुल हो मरणासन्न हो रहे हैं और कुछ तो मर भी गए हैं। इसलिए कोई ऐसा तालाब तलाश कीजिए जिसका जल पीकर सब स्वस्थ रह सके।

कुछ देर सोचकर गजराज ने कहा—यहाँ से काफी दूर निर्जन स्थान पर जमीन में खुदा हुआ और पाताल गंगा के जल से परिपूर्ण एक तालाब है। इसलिए वहाँ चलना चाहिए। ऐसा कहने पर सब हाथी सहमत होकर पाँच रात तक निरन्तर चलते हुए उस तालाब के किनारे पहुँचे। वहाँ इच्छानुसार स्नान कर सांयकाल के समय वे तालाब से बाहर निकले। उस तालाब के चारों ओर नरम जमीन पर अनेकों खरगोशों के बिल बने हुए थे। इधर-उधर घूमते हुए उन सभी हाथियों द्वारा उन खरगोशों के बिल कुचले गए। बहुत से खरगोशों के पैर, सिर और गर्दन टूट गए। कुछ मर गए और कुछ अधमरे हो गए।

फिर हाथियों के झुण्ड के चले जाने पर घबराए हुए वे खरगोश जिनके निवास-स्थान हाथियों के पैरों से कुचले गए थे, वे सब इकट्ठे होकर मन्त्रणा करने लगे—हम लोग तो हाथियों के इस प्रकार प्रतिदिन ही आने से नष्ट हो जायेंगे। इसलिए आत्मरक्षा का कोई उपाय सोचिए। किसी ने कहा कि वंश की रक्षा के लिए एक व्यक्ति को छोड़ दे, ग्राम की रक्षा के लिए कुल को छोड़ दे, देश की रक्षा के लिए ग्राम को छोड़ दे लेकिन अपनी रक्षा के लिए पृथ्वी का ही परित्याग कर दे। तो हमें यह स्थान छोड़कर अन्यत्र चलना चाहिए।

लेकिन तभी दूसरे ने कहा कि बाप–दादाओं के पैतृक स्थान को अकस्मात् ऐसे ही नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिए उनको डराने के लिए कोई अन्य उपाय करना चाहिए। तब यह सुनकर दूसरों ने कहा–यदि यह बात है तो उन्हें डराने के लिए उपाय रूप में अपना सन्देश विजयदत्त नामक खरगोशों का राजा है उसके हाथ शशांक (चन्द्रमा) के पास भेजना चाहिए। यह दूत उस गजाधिपति के पास यह कहकर भेजना चाहिए कि चन्द्रमा तुम्हें इस तालाब में आने का निषेध करता है क्योंकि हमारे (चन्द्रमा के) कुटम्बी रूप शशक इसके चारों ओर रहते हैं। ऐसा कहने पर कदाचित् परम श्रद्धेय चन्द्रमा के वचन होने के कारण वे लौट जाएँ और फिर यहाँ न आवें।

तब सभी ने यह तय किया कि लम्बकर्ण नामक खरगोश को भेजा जाए जो बोलने में निपुण और दूतकार्य में कुशल भी है। तब लम्बकर्ण, जिस रास्ते से हाथी तालाब पर जाते थे, वहाँ एक ऊँचे स्थान पर चढ़कर कहने लगा–अरे दुष्ट गजराज ! क्यों इस चन्द्रसरोवर पर इतनी असावधानी और निर्भयता से आते हो ? तुमको यहाँ नहीं आना चाहिए। अतः यहाँ से लौट जाओ और फिर यहाँ पाँव भी न रखना।

यह सुनकर आश्चर्य में पड़कर वह हाथी बोला तुम—कौन हो ? शशक ने कहा–मैं लम्बकर्ण नामक खरगोश चन्द्रमण्डल में रहता हूँ। इस समय भगवान् चन्द्रमा ने मुझे तुम्हारे पास दूत बनाकर भेजा है। तुम्हें मालुम होना चाहिए कि यथार्थवादी दूत को कुछ नहीं कहना चाहिए क्योंकि सभी राजा दूतमुख होते हैं। क्रोधवश दूत द्वारा तलवार आदि शस्त्रों के उठाए जाने पर या किसी आत्मीयजन के बन्धुओं के मारे जाने पर तथा कठोर वचन कहने पर भी, दूतों को, राजा के द्वारा नहीं मारा जाना चाहिए।

यह सुनकर उस गजराज ने कहा–हे शशक ! भगवान् चन्द्र का सन्देश कहो, जिससे कि शीघ्र ही उसका पालन किया जाए। शशक लम्बकर्ण ने कहा कि चन्द्रमा का सन्देश है कि–कल हाथियों के समूह के साथ आते हुए आपने बहुत से खरगोश पैरों तले रौंद दिए। क्या आप लोग यह नहीं जानते कि ये लोग मेरे कुटुम्बी जन हैं। अतः यदि आप अपना जीवन चाहते हो तो शशकों की जीवन रक्षा के लिए अब कभी इधर मत आना।

गजराज ने पूछा, भगवान् चन्द्र कहाँ हैं ? शशक ने कहा—इस समय वह आपके हाथियों के समूह से कुचलने से बचे हुए खरगोशों को धीरज बँधाने व आश्वासन देने के लिए इस तालाब में आए हुए हैं और मुझे आपके पास यह सन्देश सुनाने के लिए भेजा है। गजराज ने कहा—अच्छा, यदि ऐसी बात है तो मुझे उनके दर्शन कराओ जिससे कि मैं उन्हें प्रणाम कर और क्षमा याचना कर कहीं अन्यत्र दूर चला जाऊँगा।

खरगोश ने कहा—आप अकेले ही मेरे साथ आइए तो मैं आपको चन्द्र भगवान् के दर्शन करा दूँ। तब खरगोश रात्रि के समय गजराज को अकेले ही तालाब के किनारे ले गया और चन्द्रप्रतिबिम्ब को दिखा कर, बोला—इस समय स्वामी ध्यानमग्न हैं, समाधि लगा कर बैठे हैं। इसलिए चुपचाप प्रणाम कर जल्दी चले जाइए, नहीं तो समाधि के भंग होने से फिर और अधिक क्रोध करेंगे।

तब हाथी भी भयभीत होकर उन्हें शीघ्रता से प्रणाम कर और क्षमा मांग कर फिर वहाँ कभी न आने का वायदा कर वहाँ से कहीं दूर अन्यत्र स्थान पर चला गया। सभी शशक भी अपने-अपने परिवार सहित सुखपूर्वक रहने लगे। अतः महापुरूषों का सम्बन्ध बता कर नाम लेने, reference देने से अपना प्रभुत्व कायम किया जा सकता और काम बनाया जा सकता है।

28

धूर्त-ब्राह्मण और बलि-छाग कथा

किसी नगर में मित्रशर्मा नामक, अग्निहोत्र यज्ञ करने वाला, ब्राह्मण रहता था। वह एक बार माघ महीने में जब ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी, आकाश मेघों से ढ़का हुआ था और धीमी-धीमी वर्षा की फुहार पड़ रही थी, तब किसी दूसरे ग्राम में अपने यज्ञ के लिए यजमान से पशु मांगने गया। उसने यजमान से कहा—हे यजमान ! मैं आगामी अमावस को यज्ञ करूँगा इसलिए मुझे एक पशु दे दो।

उस यजमान ने शास्त्रों में जैसा पशु बताया गया था वैसा ही मोटा-ताजा पशु दे दिया। वह ब्राह्मण भी, घबराकर इधर-उधर भागते हुए देखकर, उस छाग को अपने कन्धे पर चढ़ा कर जल्दी-जल्दी अपने नगर की ओर चल पड़ा।

जब वह वापिस जा रहा था तब रास्ते में भूख-प्यास से व्याकुल तीन धूर्त मिले। उन्होंने हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले उस बकरे के छोटे बच्चे (मेमने) को ब्राह्मण के कन्धे पर चढ़ा हुआ देखकर परस्पर कहा—ओह ! इस पशु को खाकर आज की शीत से अपनी रक्षा करनी चाहिए। इसलिए ठग कर, और यह पशु इससे लेकर, शीत से अपनी प्राण रक्षा करनी चाहिए।

तब उनमें से एक ने अपना वेश बदल कर, बगल के मार्ग से सामने आकर उस अग्निहोत्री से कहा—अरे मूर्ख अग्निहोत्री ! तुम लोकविरूद्ध ऐसा हँसी का काम क्यों कर रहे जो इस अपवित्र कुत्ते को अपने कन्धे पर चढ़ाकर ले जा रहे हो। तब उस ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर कहा—क्या तुम अन्धे हो जो तुम इस छाग-मेमने को कुत्ता बताते हो। उस ठग ने कहा—ब्राह्मण ! आप क्रोध न करें, आप अपनी इच्छानुसार जाएँ। मुझे आपके इस कार्य से क्या प्रयोजन है ?

वह अभी कुछ ही दूर गया था कि दूसरे धूर्त्त ने सामने से आकर कहा—हे ब्राह्मण ! बड़े कष्ट की बात है। यद्यपि यह मरा हुआ बछड़ा तुम्हें प्यारा है तथापि इसे कन्धे पर चढ़ाना उचित नहीं है। तब वह ब्राह्मण क्रोधपूर्वक बोला—क्या आप अन्धे हैं जो इसे मरा हुआ बता रहे है। उस धूर्त ने कहा भगवान् ! क्रोध न कीजिए, मैने अज्ञानतावश ऐसा कह दिया। आप जैसा चाहें वैसा करें।

इसके बाद वह अग्निहोत्री ब्राह्मण अभी कुछ ही दूर गया था कि तीसरे धूर्त्त ने वेष बदल कर सामने आकर कहा—हे ब्राह्मण ! यह बहुत ही अनुचित है कि तुम गधे को कन्धे पर चढ़ाकर ले जा रहे हो, इसलिए इसका त्याग कर दो। वह ब्राह्मण भी, यह सोचकर कि यह अवश्य ही कोई अपवित्र पशु है इसे त्याग ही देना उचित है, उस पशु को धरती पर फेंककर अपने घर की ओर चला गया।

तब उस ब्राह्मण के चले जाने पर तीनों धूर्तों ने मिलकर उस पशु को सानन्द खाया। अतः बुद्धि कौशल-चातुर्य से दूसरे व्यक्ति को सहज ही प्रभावित कर उससे अपनी बात मनवाई जा सकती है और उसकी प्रियतम वस्तु भी उसे बहला-फुसलाकर प्राप्त की जा सकती है। अतः ऐसे चतुर-सयाने लोगों से सावधान रहने की आवश्यकता है। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जो कि नए भृत्य के नम्र व्यवहारों से, अतिथि के वचनों से, स्त्रियों के रोने से और धूर्तों के प्रवंचनायुक्त जालों से ठगा न गया हो।

29

ब्राह्मण-सर्पकथा

लालच बुरी बला है, इसमें कहाँ भला है ?

लालच में जो फंस जाता, तरह-तरह के दुःख पाता।

किसी नगर में हरिदत्त नामक ब्राह्मण रहता था। उसे कृषि कर्म में कभी लाभ न होने के कारण उसकी सारी मेहनत और समय व्यर्थ हो जाता था। एक दिन वह अत्यन्त गर्मी में धूप से पीड़ित हो अपने खेत में ही वृक्ष की छाया में लेटा था। तभी उसने पास में ही बाम्वी पर फन फैलाए हुए भयानक सर्प को देखा और सोचा—यह सर्प मेरे इस क्षेत्र-खेत का देवता है। इनकी मैंने कभी पूजा नहीं की। इसी कारण मुझे इस खेती में लाभ नहीं होता। इसलिए आज से मैं इनकी पूजा करूँगा।

यह निश्चय करके वह कहीं से दूध माँग कर लाया और उसे कटोरे में रखकर वाम्बी के पास रखकर हाथ जोड़ कर बोला—हे क्षेत्ररक्षक ! हे क्षेत्राधिपते ! मुझे अभी तक मालुम नहीं था कि आप यहाँ ही रहते हैं इसलिए मैंने कभी आपकी पूजा नहीं की, आप मुझे क्षमा करें। यह कहकर और दूध का कटोरा वहीं रखकर वह अपने घर चला गया। अगले दिन प्रातः काल आकर उसने उस कटोरे में एक स्वर्ण मुद्रा देखी। इसी प्रकार प्रतिदिन वह अकेले ही आकर उसे दूध देता और एक स्वर्ण मुद्रा पाता।

एक दिन बाम्बी पर दूध ले जाकर रखने के लिए अपने पुत्र को नियुक्त कर ब्राह्मण दूसरे गाँव चला गया। पुत्र भी वहाँ उसी प्रकार नित्यप्रति दूध रखता और स्वर्णमुद्रा पाता था। एक दिन उसने सोचा—निश्चय ही यह बाम्बी स्वर्णमुद्राओं से भरी हुई है क्यों न इस सर्प को मार कर सभी स्वर्ण मुद्राएँ एक साथ ले लूँ। यह निश्चय कर दूसरे दिन दूध देते समय सर्प पर ब्राह्मण पुत्र ने डण्डे से प्रहार किया। भाग्यवश वह मरा नहीं, बच गया। उसने क्रोध से तेज विषैले दाँतों से ऐसे जोर से काटा कि

वह तुरन्त मर गया। कुटुम्बीजन ने वहीं क्षेत्र के पास ही लकड़ियाँ एकत्रित कर उसका दाह संस्कार कर दिया। दूसरे दिन जब उसका पिता वापिस आया और पुत्र विनाश का कारण सुना तो उसने भी कहा कि लोभ का परिणाम विनाश ही होता है।

यह कह कर वह ब्राह्मण प्रातः काल दूध लेकर वहाँ बाम्बी पर पुनः गया और ऊँचे स्वर से सर्प की स्तुति करने लगा। तब सर्प बहुत देर बाद बाम्बी के अन्दर से ही बोला—हे ब्राह्मण ! तू लोभवश पुत्र शोक भी भूलकर यहाँ आया है। अब आगे से तुम्हारी और मेरी मित्रता ठीक नहीं क्योंकि जो प्रीति खण्डित होने पर फिर जोड़ी जाती है, वह स्नेह करने पर भी नहीं बढ़ती। धन के लोभ और यौवन से उन्मत्त हो तेरे पुत्र ने मुझे मारा और मैंने उसे काटा। मैं डण्डे की चोट को कैसे भुला सकता हूँ और तुम पुत्रशोक जन्य दुःख को कैसे भूल सकते हो। यह कहकर और एक बहुमूल्य हीरे की मणि उसे देकर 'अब यहाँ कभी न आना' ऐसा कहकर पुनः बिल के अन्दर घुस गया। ब्राह्मण भी उस हीरे की मणि को लेकर पुत्र की बुद्धि पर पश्चात्ताप करते हुए अपने घर लौट गया।

30

कबूतर और लोभी बहेलिया

किसी एक घने जंगल में क्रूर-बुरे आचरण वाला बहेलिया रहता था जो वन्य पशु-पक्षियों के लिए यमराज के समान था। उसकी निर्दयता के कारण सबने उसका साथ छोड़ दिया था। न कोई उसका मित्र था न कोई उसका बन्धु-बान्धव। सभी प्राणियों की हिंसा में तत्पर वह व्याध पिंजड़ा, जाल, रस्सी, डन्डा लेकर प्रतिदिन वन में जाता था।

एक दिन वन में घूमते हुए उस व्याध के हाथ एक कबूतरी पड़ गई। उस बहेलिए ने उसे पिंजड़े में बन्द कर दिया। इसके बाद तभी वन में घूमते हुए सभी दिशाएँ मेघाच्छन्न होने से काली हो गईं और प्रलयकाल के समान बड़ी भारी तूफानी वर्षा होने लगी। भयभीत एवं वर्षा से भीगा-काँपता हुआ वह बहेलिया अपनी रक्षा के लिए कोई आश्रय तलाशते हुए एक वृक्ष के पास जा पहुँचा।

कुछ देर बाद देखते ही देखते आकाश में तारे चमकने लगे और वर्षा और हवा के रूक जाने के कारण आकाश निर्मल हो गया। तब वह वृक्ष के नीचे खड़ा मन ही मन प्रार्थना करने लगा—जो कोई भी प्राणी इस वृक्ष पर स्थित हो, मैं उसकी शरण में आया हूँ वही मेरी रक्षा करे क्योंकि मैं शीत से पीड़ित विलाप कर रहा हूँ और भूख से मूर्छितप्राय होता जा रहा हूँ।

उसी वृक्ष पर कोई कबूतर बहुत दिनों से वहाँ रहता था। पत्नी वियोग से व्याकुल वह भी विलाप कर रहा था। वायु सहित तूफानी वर्षा हो रही थी—मेरी प्रिय पत्नी नहीं आई, कहीं उसका कुछ अनिष्ट तो नहीं हो गया, उसके बिना आज यह मेरा घर सूना-सूना सा लग रहा है। ईंट-गारे से बने घर को विद्वान् घर नहीं कहते अपितु पत्नी से ही घर को घर कहा जाता है क्योंकि भार्याशून्य गृह वन के समान होता है।

तब पिंजड़े में बन्द कबूतरी पति के दुःखपूर्ण एवं करूण वचन सुनकर

पति के व्यवहार से सन्तुष्ट होकर कहने लगी—पिता, भाई और पुत्र ये सब स्त्रियों को परिमित-सीमित सुख और धन दे सकते हैं किन्तु अपरिमित धन और सुख देने वाले पति की कौन पूजा नहीं करेगी ? हे प्रिये ! तुम्हें जो हितकारी-शुभ वचन मैं कह रही हूँ उसे तुम सावधान होकर सुनो। शरण में आए हुए जन की रक्षा तुम्हें अपने प्राण देकर भी करनी चाहिए। सर्दी और भूख-प्यास से व्याकुल यह व्याध तेरे घर आकर जमीन पर सोया है तुम इसकी सेवा-सुश्रूषा करो। तुम इससे द्वेष मत करो कि इस दुरात्मा ने मेरी प्रिया को बन्धन में डाल दिया है क्योंकि मैं तो अपने ही पूर्वकृत कर्मों के पाशों से बन्धी हुई हूँ। इसलिए तुम मेरे बन्धन में पड़ने के कारण उत्पन्न द्वेष छोड़कर और धर्मबुद्धि से अपने कर्त्तव्य में मन लगा इस व्याध की शास्त्रानुसार पूजा करो।

अपनी पत्नी कबूतरी के धार्मिक उक्तियों से पूर्ण वचन सुनकर कबूतर व्याध से नम्रतापूर्वक बोला—हे भद्र ! आपका स्वागत हो, आप कहें, मैं आपकी क्या सेवा कँरू ? आपको अपने मन में खेद नहीं करना चाहिए। आप समझो कि बस आप अपने ही घर में हो। उसका यह वचन सुनकर व्याध उस कबूतर से बोला—हे कपोत ! मुझे सर्दी सता रही है। अतः शीत से मेरी रक्षा करो।

तब वह कबूतर कहीं जाकर आग का एक अंगारा ले आया और सूखे पत्तों पर उसे डाल दिया और अग्नि प्रज्वलित कर दी और अपने अतिथि से कहा—हे अतिथि ! तुम निर्भय होकर अच्छी तरह अपने सभी अंगों को सेको। वस्तुतः हम सब वनवासी दैवयोग से प्राप्त वस्तुओं पर ही निर्भर करते हैं इसलिए मेरे पास कुछ सम्पत्ति नहीं है जिससे मैं आपकी भूख मिटा सकुँ। जो पुरूष घर में आए हुए एक भी अतिथि को भोजन कराने की शक्ति नहीं रखता उस पुरूष के अनेक दुःखों से परिपूर्ण घर में रहने से क्या लाभ ? इसलिए दुःखी जीवन को व्यतीत करने वाले इस शरीर को ऐसा कर दूँ जिससे फिर कभी याचकों के आने पर 'नहीं है', ऐसा न कहुँ (अर्थात् अपने इस दुःखपूर्ण जीवन को समाप्त करके मैं आपके आतिथ्य के लिए अपने शरीर की भेंट चढ़ा दूँगा)।

उस कबूतर ने अपने ही जीवन की निन्दा की, न कि उसकी कबूतरी

को कैद करने वाले बहेलिए की। फिर बहेलिए से—आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करें मैं आपकी भूख मिटाऊँगा—ऐसा कहकर वह धर्मात्मा कबूतर अग्नि की प्रदक्षिणा कर उसमें प्रविष्ट हो गया।

कबूतर को अग्नि में गिरा देखकर व्याध के मन में दया आई और स्वयं से इस प्रकार बोला—जो मनुष्य पाप कर्म करता है वह उसे स्वयं ही भोगना पड़ता है। पाप कर्म सदैव दुःखदायी होता है। दुःख को कोई भी भोगना नहीं चाहता, अतः उसे पाप कर्म करने नहीं चाहिए। मैं पापबुद्धि, सदा दुष्कर्म करने वाला महाभयंकर नरक में गिरूँगा, यह सुनिश्चित है। निश्चय ही, इस महात्मा कपोत ने अपना माँस मुझे देकर मुझ निर्दयी को दया सिखा दी। आज से मैं पाप कर्म छोड़कर धर्म का पालन करूँगा। ऐसा सोचकर बहेलिए ने लाठी, जाल, पिंजरे आदि को तोड़ कर उस दीन कबूतरी को भी छोड़ दिया। लेकिन वह कबूतरी भी अपने पति को अग्नि में पड़ा देखकर अपने जीवन को निरर्थक समझती हुई उसी अग्नि में प्रविष्ट हो गई और अपने दिव्य देहधारी पति से जा मिली और स्वर्ग के दिव्य सुख भोगने लगी। शिकारी भी अत्यन्त विरक्त भाव से हिंसा त्याग कर तप करने के लिए घने जंगल में प्रविष्ट हुआ, और सभी पापों से मुक्त हो स्वर्ग का आनन्द भोगने लगा।

बाम्बी और पेट में स्थित साँप की कथा

किसी नगर में देव शक्ति नामक राजा था। उसके पुत्र के पेट में एक साँप अपनी बाम्बी बना कर रहता था जिससे वह राजपुत्र प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। अच्छे-अच्छे वैद्यों द्वारा अनेक प्रकार के आयुर्वेद के औषधोपचार से भी वह ठीक नहीं हो पा रहा था। राजपुत्र भी अपनी बिमारी से तंग आकर अपना घर छोड़कर वैरागी सा बन कर दूसरे देश में जाकर किसी मन्दिर में अपना समय बिताने लगा।

उसी देश के राजा की दो जवान कन्याएँ थी। वे प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय के समय पिता को प्रणाम करती थीं और एक कन्या कहती थी—हे महाराज ! आपकी विजय हो। आपकी कृपा से सब प्रकार का सुख मिलता है। तब दूसरी कन्या कहती—हे महाराज ! अपने किए हुए को सभी भोगते है अतः आप भी भोगो। राजा इस दूसरी कन्या की बातों से इतना तंग आ चुका था कि एक दिन क्रोध में आकर अपने मन्त्रियों को आदेश दिया—इस कटु भाषिणी लड़की को किसी दूसरे देश के लड़के को सौंप दो। जिससे कि स्वयं ही कठिन-कठोर जीवन भोगे। तब मन्त्रियों ने बहुत अच्छा कह कर परिवार के कुछ सदस्यों को साथ लेकर देवमन्दिर में रहने वाले उस राजपुत्र को कन्या सौंप दी। वह कुमारी भी उस राजपुत्र को देवता रूप पति पाकर स्वयं को धन्य मानती हुई उसके साथ कहीं दूर देश में चली गई।

किसी दूरस्थ प्रदेश में पहुँचकर किसी तालाब के किनारे सामान की रक्षा के लिए राजपुत्र को छोड़कर स्वयं रसोई पकाने का सामान घी-तेल-मसाले-अनाज-दाल इत्यादि खरीदने के लिए चली गई। जब वह खरीद कर लौटी तब वह राजपुत्र पास में स्थित बाम्बी पर सिर रखकर सो रहा था और उस बाम्बी से निकल कर साँप ताजी हवा का सेवन कर

रहा था। उसी समय राजपुत्र के उदरस्थ सर्प ने मुख द्वार से बाहर निकल कर बाम्बी वाले सर्प से बातचीत करनी प्रारम्भ कर दी।

एक दूसरे को देखने से क्रोधित होने से उनके नेत्र गुस्से से लाल हो उठे। तभी बाम्बी के सर्प ने उदरस्थ सर्प से कहा—अरे दुष्ट ! सर्वांग सुन्दर इस राजपुत्र को इस तरह क्यों पीड़ित करता है ? तब मुखस्थ सर्प ने कहा—अरे दुरात्मन् तू भी इस बाम्बी में रक्खे हुए स्वर्णपूरित दोनों कलशों को क्यों घेर कर बैठा है। इस तरह दोनों इस प्रकार परस्पर विवाद कलह करते हुए एक दूसरे की गोप्य बातें प्रकाशित करने लगे।

बाम्बी में स्थित सर्प ने कहा—अरे दुष्ट ! लोग यदि यह जान जाएँ कि उबाल कर बनाई हुई पुरानी राई वाली काँजी को पीने से तुम्हारा विनाश हो जाए तो तुम्हारी खैर नहीं। यह सुनकर उदरस्थ सर्प ने कहा—यदि लोग खौलता हुआ तेल अथवा पानी तुम्हारी बाम्बी में डाल दें तो तुम्हारा विनाश हो जाए।

वृक्षों की आड़ में छिपी राजकन्या ने दोनों की इस प्रकार की रहस्मयपूर्ण बातें सुनकर वैसा ही किया जिससे कि उनका विनाश हो जाए। इसके बार वह राजपुत्री अपने पति को पूर्णतः स्वस्थ करके और भारी खजाना लेकर अपने देश को वापिस लौट आई। तब माता-पिता और बन्धुजनों से सम्मान पाती हुई अपने सुखों को भोगती हुई सुखपूर्वक रहने लगी। इस कथा का प्रमुख सन्देश है कि रिश्ते-नातेदार से झगड़े करने से अपने रहस्य प्रकाश में आते हैं और दूसरे बाहर वाले उसका फायदा उठाते हैं और विनाश कर दिया जाता है उनका।

32

मूषिका विवाह कथा

गंगा के तट पर जप-तप, यम-नियम स्वाध्याय उपवास एवं योग क्रियाओं में लगे हुए पवित्र परिमित जल को पीकर और कन्द मूल फल खाकर अपने शरीर को वल्कल वस्त्र निर्मित कौपीन से ढ़कने वाले तपस्वियों से परिपूर्ण एक आश्रम था। उस आश्रम में याज्ञवल्क्य नामक एक महर्षि रहा करते थे जो उस आश्रम के कुलपति थे।

गंगा के पवित्र जल में स्नान करके जल का आचमन करने को उद्यत उन महर्षि याज्ञवल्क्य के हाथ में बाज के मुख से छूटी हुई एक चुहिया आ गिरी। उसको महर्षि ने एक वटपत्र पर रख दिया और पुनः स्नान करने के बाद उस चुहिया को उन्होंने अपने तपोबल से कन्या का रूप देकर उसे अपने साथ आश्रम में ले आए। आश्रम में आकर अपनी निस्सन्तान पत्नी से कहा—भद्रे ! इस कन्या को ले जाओ और इसे अपनी ही कन्या की भांति रखना और उचित देखभाल करना।

ऋषि पत्नी के द्वारा संवर्धित, लालित-पालित वह कन्या धीरे-धीरे 12 वर्ष की हो गई। विवाह के योग्य हुई उस कन्या को देखकर ऋषि पत्नी ने ऋषि से कहा आप क्यों नहीं शीघ्रता से कन्या का विवाह कर देते, इसके विवाह का समय बीता जा रहा है। पत्नी की सम्मति से मुनि ने सूर्य का आह्वान किया। वेद मन्त्रों के प्रभाव से आमन्त्रित भगवान् भुवन-भास्कर सूर्य ने आकर प्रणाम करके पूछा—भगवन् ! आपने मुझे क्यों बुलाया है ? ऋषि ने कहा—यह मेरी कन्या है। यदि यह आपके साथ विवाह करना चाहे तो आप इसे स्वीकार कर लें। पुनः मुनि ने अपनी कन्या से कहा-क्या भगवान् भुवन-भास्कर तुमको वर रूप में पसन्द हैं ? पुत्री ने कहा—ये तो अत्यन्त दाहक हैं। मैं इनके साथ विवाह करना नहीं चाहती। अतः इनसे भी प्रकृष्टतर-उत्कृष्ट किसी वर का आह्वान कीजिए। कन्या की बात सुनकर ऋषि ने भगवान् भास्कर से पूछा—भगवन् ! क्या आपसे भी श्रेष्ठ कोई है ? भास्कर ने कहा—मुझसे श्रेष्ठ मेघ हैं क्योंकि उनके द्वारा आच्छादित होकर मैं अदृश्य हो जाता हूँ।

मुनि ने तत्काल मेघ को बुलाकर अपनी कन्या से कहा—पुत्रि ! इनके साथ तुम्हारा विवाह कर दूँ। कन्या ने कहा—यह तो बहुत ही काला और मूर्ख है। अतः इससे श्रेष्ठ कोई है तो उसी से मेरा विवाह कीजिए। मुनि ने मेघ से पूछा—हे मेघ ! आपसे भी कोई दूसरा श्रेष्ठ है। मेघ ने उत्तर दिया—मुझसे श्रेष्ठ वायु है। वायु के आघात से मैं छिन्न-भिन्न होकर जहाँ-तहाँ बिखर जाता हूँ। तब मुनि ने वायु का आह्वान किया। वायु के उपस्थित होने पर मुनि ने कन्या से पूछा—पुत्रि ! क्या इनके साथ तुम्हारा विवाह कर दूँ ? कन्या ने कहा—यह तो अत्यन्त चपल हैं। इनसे भी कोई अन्य श्रेष्ठ होगा। तब पवन ने कहा—मुनिवर मुझसे श्रेष्ठतर पर्वत है। बलवान् होने पर भी मैं उनके द्वारा रोक लिया जाता हूँ। और उस अचल को मैं हिला-डुला भी नहीं पाता।

पुनः मुनि ने पर्वत को बुलाकर पूछा—पुत्रि ! क्या इनके साथ तुम्हारा विवाह कर दूँ ? कन्या ने कहा—तात ! यह तो बहुत कठोर और अटल है। किसी अन्य के साथ मेरा विवाह कीजिए तो बेहतर हो। कन्या के आग्रह को सुनकर मुनि ने पर्वत से पूछा—हे पर्वतराज ! आपसे भी कोई श्रेष्ठतर है ? पर्वत ने कहा—मुझसे श्रेष्ठ चूहे होते हैं। वे मेरे शरीर को अनायास ही काट डालते हैं और खोद-खोद कर खोखला कर देते हैं। इसके बाद मुनि ने मूषकराज को बुलाकर कन्या को दिखा दिया और पूछा—पुत्रि! इसके साथ तुम्हें विवाह करना पसन्द है क्या ? कन्या ने उस चूहे को देखकर मन में सोचा—यह स्वजातीय है। उसको देखकर वह हर्षित हो रोमाञ्चित हो उठी। उसने तत्काल पिता से कहा—तात ! मुझे चुहिया बनाकर आप इनके साथ मेरा विवाह कर दें जिससे मैं अपनी जाति के अनुसार गृहिणी धर्म का पालन कर सकूं।

तब मुनि ने कन्या की इच्छानुसार उसे पुनः चुहिया बनाकर उस चूहे के साथ उसका विवाह कर दिया। वह ऋषि कन्या भी पुनः चुहिया बन कर अपनी जाति में ही सुख-आनन्द महसूस करती हुई रहने लगी। अतः स्वजातीय सुख एवं सहयोग भी जीवन की कठिनाइयों को झेलने में सम्बल प्रदान करते हैं। तभी तो विदेशों में भी समान जाति के लोग अपना-अपना समूह बनाकर रहते हैं।

33

सर्प-मण्डूक कथा

वरूणाद्रि पर्वत के समीपस्थ किसी प्रदेश में मन्दविष नामक एक वृद्ध सर्प रहा कहता था। एक दिन उसने मन ही मन में सोचा कि—मैं किस प्रकार बिना किसी आयास के ही जीविका प्राप्त करूँ। इस निर्णय के बाद वह मेंढ़कों से युक्त एक तालाब के पास जाकर अपने को कुछ अधीर सा प्रदर्शित करता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। सर्प की इस दशा को देखकर जल के समीप ही तीर पर बैठे हुए एक मेंढ़क ने उससे पूछा—मामा ! पहले की तरह आज तुम भोजन के लिए प्रयत्नशील नहीं दिखाई दे रहे हो।

सर्प ने उत्तर दिया—मुझ अभागे को अब भोजन की अभिलाषा ही कहाँ रह गई है क्योंकि आज रात्रि के प्रदोषकाल में ही मैं आहार के अन्वेषणा के लिए निकल पड़ा था। आहार की खोज में भटकते हुए मैंने एक मेंढ़क को देखा। उसे पकड़ने के उद्देश्य से अभी मैं कोशिश कर ही रहा था कि उसने भी मुझे देख लिया। मुझे देखते ही वह मृत्यु के भय से तत्काल वह स्वाध्याय में लीन ब्राह्मणों के बीच में जाकर छिप गया। पुनः मैंने उसे देखा नहीं वह कहीं अन्यत्र चला गया। किन्तु उसके वहाँ से हट जाने का मुझे पता नहीं चला और उसके भ्रम में पड़कर मैने एक ब्राह्मण के लड़के के अँगूठे को काट लिया। मेरे काटने से वह तत्काल मर गया। तब उस लड़के के पिता ने मेरी धृष्टता से क्रुद्ध एवं शोकाकुल होकर मुझे शाप देते हुए कहा—दुष्ट ! तुमने मेरे लड़के को बिना किसी अपराध के ही काट लिया है। अपने इस अपराध के कारण तुम मेंढ़कों के वाहन बनोगे। और उनका वाहन बनने से ही तुम्हारी जीविका भी चलेगी।

अतः मैं तुम लोगों का वाहन बनने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ। सर्प की इस बात को सुनकर मण्डूक ने उस वृतान्त को अन्य मेंढ़कों से कहा। वे सभी मेंढ़क अपने राजा जलपाद से इस अद्भुत घटना को

सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। जलपाद भी तालाब से बाहर निकल कर उस सर्प के फन पर आरूढ़ हो गया और उसके बाद अन्य मेंढ़क भी यथाक्रम उस सर्प के शरीर पर चढ़ गए। जिन मेंढ़कों को उसके शरीर पर चढ़ने का अवसर या स्थान नहीं मिला वे उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। मन्दविषसर्प भी उन मेंढ़कों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से उन्हें अपनी वेगवती गति से लुभाने लगा।

दूसरे दिन वह छली सर्प उनको लेकर धीरे-धीरे चलने लगा। उसकी उस मन्द चाल को देखकर जलपाद ने पूछा—भद्र ! पहले की तरह आज तेज नहीं चल रहे हो, क्या बात है ? मन्दविष सर्प ने कहा—देव ! आज मैंने कुछ खाया नहीं है। भूख के कारण आपको लेकर चलने की शक्ति मुझ में नहीं रह गई है। मण्डूकराज जलपाद से कहा—भद्र ! यदि यही बात है तो कुछ मेंढ़कों को खा लीजिए। मण्डूकराज की इस बात से प्रसन्न होकर मन्दविष सर्प ने कहा—देव ! ब्राह्मणों ने मुझे यही श्राप दिया था कि मण्डूकों की कृपा से ही तुम्हारी जीविका चलेगी। अतः आपकी इस अनुमति से मैं अनुग्रहीत हुआ और अब भोजन विषयक समस्या से छुटकारा पाने से खुश भी हूँ।

इसके बाद निरन्तर मेंढ़कों को खाने से वह सर्प अत्यन्त बलवान् भी हो गया। मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए उसने सोचा—विविध स्वादों से युक्त ये मण्डूक छल के द्वारा वशीभूत होकर मुझे खाने के लिए मिलते जा रहे हैं। मेरे खाने पर ये बहुत दिनों में समाप्त होंगे। अतः बहुत दिनों के लिए मैने भोजन का प्रबन्ध कर लिया है।

मन्दविष के कपट वाक्यों से व्यामोहित वह जलपाद मण्डूकराज यह भी नहीं समझ पाया कि मन्दविष सर्प धीरे–धीरे उसके कुल का विनाश कर रहा है। किसी दिन संयोग से एक दूसरा अत्यन्त विशालकाय सर्प उस स्थान पर आया। मण्डूकों को ढ़ोते हुए उस सर्प को देखकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। अपनी उत्सुकता शान्त करने के लिए उसने मन्दविष से पूछा—मित्र ! ये मेंढ़क तो हमारे भक्ष्य हैं। तुम इनकी सवारी बन कर यहाँ कैसे रह रहे हो ? यह तो बिल्कुल अनुचित बात है।

उसकी बात सुनकर मन्दविष ने कहा कि—मैं इस बात को खूब अच्छी तरह से जानता हूँ लेकिन मैं तो केवल कालयापन कर रहा हूँ क्योंकि में यह भली प्रकार जानता हूँ समय बड़ा बलवान् है। बड़े से बड़े राजा-महाराजा, ज्ञानी-दानी उससे बच नहीं पाए। समय आने पर धीरे-धीरे अपने आप सब कुछ ठीक हो जाता है। आवश्यकतानुसार शत्रु को भी अपने कन्धों पर चढ़ाया जाता है। इस प्रकार छल कपटपूर्ण बातों से उसे शान्त कर दिया और जलपाद से भी पूर्ववत् विश्वास उत्पन्न कर धीरे-धीरे सभी मेंढ़को को खा गया, उनके वंश का बीजमात्र भी शेष नहीं रह गया। अतः बुद्धिबल से शत्रु विनाश सहज ही सम्भव है।

जलपाद ने उस धूर्त सर्प मित्र को फटकारते हुए कहा—दुष्ट ! शीघ्रता से यहाँ से तुम चले जाओ। अब मैं तुम्हारी बातों में नहीं आऊँगा क्योंकि—भूख से व्याकुल मनुष्य क्या पाप नहीं करता। दीन-हीन व्यक्ति करूणा से रहित होते हैं—

बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्।

क्षीणाः जनाः निष्करूणाः भवन्ति।।

34

मण्डूकराज गंगदत्त कथा

किसी कुएँ में गंगदत्त नामक मेंढ़कों का राजा रहा करता था। एक बार वह बन्धुओं से पीड़ित होने पर रहट घट के सहारे कुएँ से बाहर निकला ओर सोचने लगा कि कैसे इन कुटुम्बियों से अपकार का बदला लूँ ? क्योंकि जिस मनुष्य ने विपत्ति के समय अपकार किया हो और जिसने दुर्दिनों में उपहास किया हो, इन दोनों से जिसने बदला चुका लिया हो समझो कि उसने मानों दूसरा जन्म पा लिया। इस प्रकार विचार करते हुए उसने बिल में घुसते हुए एक कृष्णसर्प को देखा तो उसने सोचा—क्यों न इसी सर्प को ले जाकर इस कुएँ के अपने शत्रु बन्धुओं को नष्ट करवा दूं। क्योंकि अपना कार्य सिद्ध करने के लिए शत्रु को शत्रु से तथा बलवान् को उससे भी अधिक बलवान् से भिड़ा देना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से शत्रु का नाश होने से किसी प्रकार का दुःख नहीं होता प्रत्युत सुख ही होता है। और भी नीतिज्ञ व्यक्ति को चाहिए कि अपने सुख के लिए शरीर के काँटे को दूसरे अधिक नुकीले काँटे से निकालने के समान क्लेशप्रद बलवान् शत्रु को दूसरे अधिक बलवान् शत्रु से भिड़ाकर समूल नष्ट कर देवे।

इस प्रकार विचार कर वह मेंढक बिल के पास पहुँकर उस सर्प को पुकारने लगा—आओ-आओ प्रियदर्शन ! आओ, यह सुनकर सर्प सोचने लगा—मुझे बुलाने वाला यह व्यक्ति अपनी जाति का तो है नहीं क्योंकि यह सर्प की आवाज नही है और न ही इस संसार में किसी दूसरे व्यक्ति से मेरा मेल है। अतः इस बिल रूपी दुर्ग में रहकर ही देखूँ कि यह कौन है ? शायद कोई मन्त्र पढ़ने वाला तान्त्रिक मन्त्र पढ़कर मुझे वश में करने वाला हो अथवा कोई औषध-निपुण व्यक्ति कहीं मुझे बन्धन में डाल दे अथवा कोई शत्रुता के कारण किसी को काटने-खाने के लिए शायद बुलाता हो। यह सोच कर सर्प अपने बिल के भीतर से ही बोला—तुम कौन हो ? मेंढ़क ने कहा—मैं गंगदत्त नाम का मेढ़कों का

राजा हूँ और मित्रता के लिए तुम्हारे पास आया हूँ। यह सुन कर सर्प ने कहा—जिस प्रकार आग और तिनकों का मेल नहीं हो सकता उसी प्रकार हमारी और तुम्हारी मित्रता असम्भव है। अतः तुम्हारा मेरे पास मित्रता के लिए आना भी विश्वास योग्य नहीं हो सकता क्योंकि जो जिसका भक्ष्य-बध्य होता है वह स्वप्न में भी किसी प्रकार उसके पास नहीं जाता फिर आप क्यों व्यर्थ की बातें करते हैं।

गंगदत्त ने कहा—हे सर्प ! आप बात तो सच ही कहते हैं कि तुम जातीय स्वभाव से ही हमारे शत्रु हो लेकिन मैं दूसरों से अपमानित होने से क्षुब्ध होकर तुम्हारे पास मदद के लिए आया हूँ। क्योंकि धन-जनादि सर्वनाश की स्थिति उत्पन्न होने पर अथवा प्राण भी खतरे में पड़ जाए तो तब मनुष्य को चाहिए कि शत्रु को भी प्रणाम करके प्राण और धनादि की रक्षा करे।

सर्प ने कहा—कहो किससे तुम्हारा अपमान हुआ है ? मण्डूकराज गंगदत्त ने कहा—मेरे कुटुम्बी लोगों ने मेरा अपमान किया है। सर्प ने पूछा—तुम्हारा निवास स्थान कहाँ है ? क्या बाबली में, कुएँ में अथवा तालाब में। सर्प ने कहा—अहो, हम चरणहीन (अपाद) हैं इसलिए उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकते और यदि किसी प्रकार प्रविष्ट हो भी जाऊँ तो वहाँ मेरे लिए कोई उपयुक्त स्थान भी नहीं है जहाँ बैठ कर मैं तुम्हारे कुटुम्बियों को मार सकुं। अतः तुम यहाँ से चले जाओ।

गंगदत्त ने कहा—आएँ, मैं आपको बड़ी आसानी वहाँ प्रविष्ट करा दूंगा और कुएँ के अन्दर दिवार में एक बिल है, उसमें रहकर आप आसानी से मेरी कुटुम्बियों को मार सकेगें। सर्प ने सोचा—मैं भी वृद्ध हो गया हूँ। कभी-कभी कठिनाई से एकाध-चूहे को पकड़ पाता हूँ। यह अच्छा ही हुआ कि इस कुल के नाशक मण्डूक ने मुझे यह सुखकर जीविका का उपाय बता दिया, इसलिए जाकर उन मेंढ़को को अवश्य खाना चाहिए। ठीक ही कहा गया है—जिसकी शक्ति क्षीण हो चुकी है और जिसके सहायक भी न हो, यदि वह समझदार हो तो बैठे-बिठाए सुख पूर्वक प्राप्त होने वाली जीविका को अपनाए।

सर्प ने इस प्रकार सोचकर गंगदत्त से कहा—यह बात है तो तुम आगे चलो। गंगदत्त ने कहा—हे प्रियदर्शन ! मैं तुम्हें वहाँ सरलता से ले चलुँगा

और वहाँ रहने योग्य अनुकूल स्थान भी दिखा दूँगा, किन्तु मेरे परिवार की रक्षा करनी होगी। जिन्हें मैं दिखालाऊँगा केवल उन्हें ही खाना। सर्प ने कहा—अब तुम मेरे मित्र हो गए हो, इसलिए तुम्हे डरना नहीं चाहिए। तुम्हारे कथनानुसार ही केवल तुम्हारे कुटुम्बियों को ही खाऊँगा। यह कहकर उसने अपने बिल से बाहर आकर उसका आलिंगन किया और उसके साथ चल पड़ा।

फिर उस कुएँ के पास पहुँकर, रहट-ढेंकुली के मार्ग से उस सर्प को उस कुएँ में उस कोटर में ठहरा कर शत्रु बान्धवों को दिखा दिया और सर्प ने धीरे-धीरे उन सबको खा लिया। उसके बाद सभी शत्रु मेंढ़क बन्धुओं के समाप्त हो जाने पर सर्प ने गंगदत्त से कहा—मैंने तुम्हारे सभी शत्रु समाप्त कर दिए हैं, मुझे अब और कोई भोजन दो। मेरी आजीविका-भोज्य सामग्री का प्रबन्ध भी तुम्हें ही करना होगा क्योंकि तुम्ही मुझे यहाँ लाए हो।

गंगदत्त ने कहा—आपने मित्र का दायित्व निभा दिया जो कि एक मित्र को करना चाहिए, इसलिए अब आप इसी रहट मार्ग से चले जाएँ। सर्प ने कहा—अरे गंगदत्त ! तुमने यह ठीक बात नहीं कही क्योंकि वहाँ में अब कैसे जाऊँ, मेरा बिल रूपी दुर्ग तो अब किसी और ने घेर-हथिया-कब्जा कर लिया होगा। इसलिए रहते हुए मुझे अपने वंश का ही एक-एक मण्डूक नित्य प्रति दिया करो। नहीं तो मैं सभी को एक साथ खा जाऊँगा।

यह सुनकर व्याकुल होकर गंगदत्त सोचने लगा—ओह ! सर्प को लाकर मैंने यह सब क्या कर दिया ? यदि अब मैं इसे मना करता हूँ तो यह सभी को खा जायेगा। बुद्धिमान् पुरुष सर्वनाश उपस्थित होने पर आधे का परित्याग कर देता है और आधे से अपना काम करता है क्योंकि सर्वनाश असह्य होता है।

इस प्रकार विचार कर गंगदत्त प्रतिदिन एक-एक मेंढ़क खाने की इजाजत देने लगा। वह सर्प उस प्राप्त मेंढ़क को खाकर, परोक्ष में अन्यान्य मेंढ़कों को भी खा जाता था। फिर वह सर्प अन्य मेंढ़कों को खाकर गंगदत्त के पुत्र यमुनादत्त को भी खा गया तो गंगदत्त जोर-जोर से

चिल्लाकर स्वयं को धिक्कारता हुआ शान्त नहीं हुआ तो उसकी पत्नी ने कहा—अपने ही कुल का नाश करने वाले अब क्यों रोते हो ? अपने ही वंश का नाश हो जाने पर अब हमारी रक्षा कौन करेगा ? अतः विनाश अवश्य भावी है। इसलिए अब भी अपने यहाँ से निकलने और इसके मारने का उपाय सोचो।

सभी मेंढ़कों को खा लेने के उपरान्त जब केवल गंगदत्त ही शेष बचा तो प्रियदर्शन सर्प ने फिर वही प्रश्न भोजन से सम्बन्धित दोहराया—हे गंगदत्त। मैं बहुत भूखा हूँ। सभी मेंढ़क समाप्त हो चुके हैं। इसलिए मुझे कुछ भोजन दो क्योंकि मुझे तुम ही यहाँ बुलाकर लाए हो। गंगदत्त ने कहा—मित्र ! मेरे रहते हुए तुम्हें इस विषय कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यदि तुम मुझे अनुमति दो तो मैं बाहर जाकर दूसरे कुओं से अन्य मेंढ़कों को विश्वास दिलाकर अर्थात् बहकाकर-फुसला कर यहाँ ले आऊँ। सर्प ने कहा—तुम मेरे भाई तुल्य हो, इसलिए मैं तुम्हें नहीं खा सकता लेकिन मेरे भोजन की व्यवस्था तो करनी ही होगी। यह सुनकर गंगदत्त रहट के सहारे अनेक देवी—देवताओं की पूजा और भेंट की मनौती मानता हुआ उस कुँए से बाहर निकला।

प्रियदर्शन सर्प भी, अन्य कुओं से लाए जाने वाले मेंढ़कों की प्रतीक्षा में उसी कुएँ में बैठा रहा। बहुत काल उपरान्त भी जब गंगदत्त नहीं लौटा तो प्रियदर्शन सर्प ने दूसरे कुएँ में रहने वाली गोह-गोधा को कहा—हे भद्रे ! मेरी थोड़ी सहायता करो क्योंकि गंगदत्त से तुम्हारा चिरकाल का परिचय है। अतः किसी कुएँ-जलाशय से उसकी तलाश करके मेरा सन्देश उससे कहो कि यदि अन्य मेंढ़क नहीं आते तो तुम अकेले ही जल्दी चले आओ ! मैं तुम्हारे बिना यहाँ नहीं रह सकता और यदि मैं तुम्हारी अनुपस्थिति में कोई कार्य तुम्हारे विरुद्ध करूँ तो मेरा पुण्य नष्ट हो जायेगा।

गोह भी उसके कहने से गंगदत्त को शीघ्र ही तलाश करके उससे बोली—भद्र गंगदत्त ! तुम्हारा वह मित्र प्रियदर्शन तुम्हारी प्रतीज्ञा कर रहा है। शीघ्र चलो, तुम्हारे विरुद्ध कोई आचरण न करने के लिए उसने प्रतीज्ञा भी की है, अतः निश्शंक होकर चलो ! यह सुनकर गंगदत्त ने कहा—भूखा मनुष्य कौन सा पाप नहीं करता ? क्षीण मनुष्य निष्करुण होते ही हैं । हे प्रिये ! उस प्रियदर्शन सर्प से जाकर कह दो अब गंगदत्त पुनः कूप में आने वाला नहीं है। इस प्रकार कहकर उसने उस गोह को वापिस लौटा दिया।

35

मगर-वानर कथा

समुद्र तट पर सदा फलने वाला एक विशाल जामुन का वृक्ष था। उस वृक्ष पर रक्तमुख नामक वानर रहता था। कभी-कभी उस वृक्ष के नीचे करालमुख नामक मगरमच्छ समुद्रजल से निकलकर कोमल-शीतल बालुका भूमि पर आकर बैठ जाया करता था। रक्तमुख भी मैत्री भाव से उसका आतिथ्य-आवभगत, ऊपर से मीठे-मीठे जामुन के फल गिरा कर, करता था। धीरे-धीरे इस प्रकार के आतिथ्य सत्कार से दोनों में परस्पर प्रगाढ़ मैत्री हो गई। मगर भी अक्सर अपने खाने से बचे हुए मधुर जामुन के फल घर ले जाकर अपनी पत्नी को भी खाने के लिए दे दिया करता था।

एक दिन उसकी पत्नी ने उस मगर से पूछा—नाथ ! ऐसे अमृत तुल्य फल तुम नित्य प्रति कहाँ से लाते हो ? मगरमच्छ ने कहा—भद्रे ! रक्तमुख नामक वानर मेरा परममित्र है, वही प्रेमपूर्वक ये फल देता है। तब उसकी पत्नी ने कहा जो सदा ही ऐसे मधुर फल खाता है उसका हृदय तो अवश्य ही मीठा-अमृत तुल्य ही होगा। मुझे उसका हृदय खाने के लिए लाकर दो जिससे कि मैं उसे खाकर जरा-मृत्यु से रहित हो जाऊँ और तुम्हारे साथ जीवन के सुख भोग सकुँ।

पत्नी के स्त्री-हठ को हटाने-रोकने के लिए मगर ने उसे समझाया कि—भद्रे ! ऐसा मत कहो क्योंकि हमारी परस्पर प्रगाढ़ मैत्री होने से सगे भाई का सा व्यवहार है। दूसरी बात यह भी है कि वह नित्य प्रतिदिन ही मधुर फल देकर हमारा उपकार भी करता है। इसलिए भी मैं उसे मार नहीं सकता। इसलिए तुम इस निरर्थक हठ को छोड़ दो। लेकिन उसके स्त्री-हठ के आगे उसकी एक न चली।

जब कई दिन तक बिना खाए-पिए भूखी-प्यासी पड़ी मगरमच्छी को देख न सका तो मगरमच्छ व्यथित हृदय से वानर को अपने साथ लिवा

लाने के लिए चल पड़ा। क्या करूँ ? कैसे करूँ इत्यादि बातें रास्ते भर सोचता हुए खिन्न-परेशान मन से वानर के पास पहुँचा। वानर भी उसे देर से आने और कुछ परेशान सा देखकर बोला—मित्र ! आज आने में देर क्यों हुई ? चेहरा भी कुछ परेशान सा लगा रहा है। तब मगरमच्छ ने कहा—मित्र ! आज तुम्हारी भाभी ने मुझे कठोर शब्दों में फटकार लगाई है और कहा है तुम नित्य प्रति ही उनसे मधुर फल लाते-खाते हो लेकिन कभी भी यहाँ अपने घर पर नहीं निमन्त्रित करते हो। प्रत्युपकार से यदि उन्हें अपने घर पर भोजन नहीं कराते हो तो तुमसे अधिक कृतघ्न कौन होगा ? अतः मैं अपने देवर को अपने बनाए स्वादिष्ट भोजन से खुश करके उपकार का बदला चुकाना चाहती हूँ। तुम्हारे विषय में उससे वाद-विवाद करने से मुझे इतनी देर हो गई। अतः अब मेरे साथ मेरे घर चलो। तुम्हारी भाभी चौका बनाकर उत्तम-उत्तम वस्त्राभूषणों से सजी, दरवाजे पर वन्दनवार बाँध कर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

मगरमच्छ की चिकनी-चुपड़ी बातों से वानर ने साथ चलने की मानसिकता तो बना ली लेकिन कहा—मित्र ! हम वन में रहने वाले हैं और आपका घर जल में है इसलिए हम वहाँ कैसे जा सकते हैं ? अतः हमारी भाभी को भी यहीं ले आईए। जिससे मैं उन्हें प्रणाम कर उनका आर्शीवाद ग्रहण करूँ। मगरमच्छ ने कहा—मित्र ! हमारा घर समुद्र किनारे मनोहर बालुकामय तट पर है। अतः मेरी पीठ पर सवार होकर निर्भयतापूर्वक चलो।

यह सुनकर वानर ने आनन्दपूर्वक कहा—भद्र ! यदि ऐसी बात है तो फिर देर क्यों ? जल्दी करो, यह लो आपकी पीठ पर चढ़ जाता हूँ। वानर के मगर की पीठ पर सवार होने पर मगर अगाध समुद्र जल में वेगपूर्ण गति से ले चला। वानर ने भयभीत होकर कहा—भाई ! धीरे-धीरे चलो। समुद्र की महान् तरंगे मेरे शरीर को डुबो रही हैं। यह सुन कर मगर सोचने लगा—इस समय अगाध जल में यह मेरे अधीन है, मेरी पीठ से तिलभर भी इधर-उधर नहीं हो सकता, इसलिए अब इससे अपना अभिप्राय-प्रयोजन स्पष्टतः कह देना चाहिए, जिससे कि यह अपने इष्ट देव को स्मरण कर ले। यह सोचकर मगरमच्छ बोला—मित्र ! पत्नी के कहने से मैं तुम्हे विश्वास दिला कर यहाँ तुम्हे मारने के लिए लाया हूँ। अतः अब तुम अपने इष्ट देव का स्मरण कर लो।

परेशान वानर ने पूछा—मित्र ! मैंने तुम्हारी पत्नी का क्या बुरा किया है जिसके कारण तुमने मुझे मारने का यह उपाय किया है। मगर ने कहा—हे मित्र ! मेरी पत्नी की इच्छा थी कि अमृततुल्य फलों के रसास्वाद से स्वादिष्ट तुम्हारा हृदय खाऊँ, इसी कारण मैंने यह सब किया।

तब प्रत्युत्पन्न मति वानर ने कहा—मित्र ! यदि ऐसी बात थी तो वहाँ पर ही यह सब कुछ क्यों नहीं कहा ? मैं सदा ही अपना हृदय जम्बुकोटर में सुरक्षित रखता हूँ, उसे मैं भाभी के लिए सहर्ष दे देता। अब यहाँ तो मैं हृदयरहित हूँ। लोभ-मोह में अन्धे मगर ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—मित्र ! तो चलो, मैं तुम्हें वापिस लिए चलता हूँ। तुम मुझे अपना हृदय दे देना जिसे खाकर मेरी रूष्टा पत्नी सन्तुष्ट हो जाएगी।

यह कहकर मकर वानर को पुनः वापिस लौटा लाया। वानर भी हर्षपूर्ण अपने इष्ट देवों का धन्यवाद करता हुआ कूद कर जम्बु वृक्ष पर चढ़ गया और धूर्त मित्र मगर को मन ही मन कोसता हुआ सोचने लगा—अविश्वासी शत्रु पर पर तो कभी विश्वास करना ही नही चाहिए, विश्वासी मित्र पर भी कभी विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि अविश्वास से उत्पन्न भय, मनुष्य को समूल नष्ट कर देता है। आज मानों मेरा पुनर्जन्म हुआ है। वानर अभी ऐसा सोच ही रहा था कि मगर ने पुकार कर कहा—मित्र ! अपना हृदय तो लाओ जिससे अपनी पत्नी को सन्तुष्ट कर सकूँ। तब वानर ने हंसकर भर्त्सनापूर्वक कहा—मूर्ख ! विश्वासघाती ! तुझे धिक्कार है, क्या कभी किसी के दो हृदय हुआ करते हैं ? तुम यहाँ से शीघ्रता से चले जाओ। यहाँ फिर कभी मत आना।

यह सुन भौंचक्का सा होकर लज्जित होकर सोचने लगा—मैं महामूर्ख हूँ, मैंने अपना अभिप्राय इससे कह क्यों दिया। अच्छा तो इसे फिर से विश्वास दिलाता हूँ। तब मगर ने कहा—मजाक में मैंने यह सब कुछ कहा-करा था। उसे तुम्हारे हृदय से कोई प्रयोजन नहीं है। तुम हमारा आतिथ्य स्वीकार करो और हमारे घर चलो। तुम्हारी भाभी तुम्हारी प्रतीक्षा में उत्कठित हो रही होगी। वानर ने कहा—अरे दुष्ट ! चले जाओ, अब मैं कभी नहीं जाऊँगा क्योंकि भूखा व्यक्ति क्या पाप नहीं करता ?

36

सिंह और लम्बकर्ण गदहा

किसी वन में करालकेसर नामक शेर रहता था। हमेशा उसका आदेश पालन करने वाला धूसरक नामक गीदड़ उसका सेवक था। एक बार एक जंगली हाथी से युद्ध करते हुए शेर काफी घायल हो जाने से चलने-फिरने और अपना शिकार करने में असमर्थ हो गया। भूख से व्याकुल होने पर उसने शेर से कहा—स्वामिन् ! मैं अत्यन्त भूख से पीड़ित हूँ और आप चोटों के कारण चलने फिरने में भी असमर्थ हूँ। मैं भी भूख के कारण कमजोर होने से आपकी सेवा कैसे करूँ ? शेर ने कहा—जैसे भी हो किसी पशु की तलाश करो जिससे कि इस पीड़ित अवस्था में भी उसे मार कर आहार प्राप्त कर सकूँ।

शेर का आदेश पाकर गीदड़ पास के गाँव में किसी पशु की खोज में गया। वहाँ उसने देखा कि लम्बकर्ण नामक गदहा तालाब के किनारे कहीं-कहीं थोड़ी-थोड़ी उगी हुई घास कठिनाई से प्राप्त कर पा रहा था। तब गीदड़ ने पास जाकर नम्रतापूर्वक कहा—मामू ! मेरा नमस्कार स्वीकार करें। चिरकाल के बाद आप दिखाई दिए हैं। कहिए आप इतने दुर्बल कैसे हो गए हैं ? लम्बकर्ण ने कहा—अरे भांजे ! क्या कहुँ, मेरा मालिक धोबी बड़ा निर्दयी है । वह मुझ पर खूब तो बोझा लाद देता है और खाने को मुट्ठी भर घास ही देता है और वह भी मिट्टी और कंटीले-नुकीले अंकुरों वाली होती है। भरपेट भोजन न मिलने से मैं शक्तिहीन होता जा रहा हूँ।

यह सुनकर धूसरक को उस गदहे को बहलाने-फुसलने का अच्छा मौका मिला। धूसरक ने लम्बकर्ण गदहे से कहा—मामू ! अगर यह बात है तो मरकत मणि के समान हरी-भरी घास वाला मैदान नदी के पार है। वहाँ आकर मेरे साथ चलकर रहो। मुझे तुम्हारे सुभाषितों से युक्त अच्छे-अच्छे उपदेश भी सुनने को मिलेंगे। लम्बकर्ण ने कहा—सीधे सरल

प्राणी जंगली जानवरों के शिकार हुआ करते हैं। इसलिए उस सुन्दर स्थान से भी क्या लाभ ?

गदहे की आशंका से धूर्त गीदड़ धूसरक और भी अधिक सावधान हो गया और उसे भरोसा दिलाने लगा। गीदड़ धूसरक ने लम्बकर्ण को भरोसा दिलाते हुए कहा—मामू ! ऐसा मत कहो। वह स्थान मेरी भुजा रूपी पिंजरे से सुरक्षित है। वहाँ किसी शत्रु का प्रवेश नहीं हो सकता है। लेकिन इसी दोष के कारण पर्याप्त भोजन न मिलने से धोबी द्वारा सताई हुई तीन गर्दभियाँ वहाँ हैं जिनके कोई पति नहीं हैं। उन्होंने मुझे कहा है—मामू ! तुम दूसरे गाँव जा रहे हो तो वहाँ से हमारे लिए कोई सुयोग्य वर ढूँढ कर लाना। उन्हीं के लिए मैं तुम्हें ले जा रहा हूँ। शृगाल की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर लम्बकर्ण ने कहा—भान्जे ! यदि ऐसी बात है तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।

गीदड़ की बातों में आकर गदहा जब शेर के पास पहुँचा तो भूख से व्याकुल शेर ने ज्यों हि उठकर उसे पकड़ने की कोशिश की त्यों ही गदहा भागने लगा। भागते हुए गदहे के ऊपर शेर ने जो पञ्जा मारा वह दुर्भाग्यग्रस्त पुरूष के पुरूषार्थ के समान व्यर्थ हो गया। तब शृगाल ने शेर से क्रोधपूर्वक कहा—बस यही बल-पराक्रम है कि हाथ में आया गदहा भी निकाल दिया। यदि उसे पकड़ नहीं पाए तो आगे अपनी आजीविका कैसे चलाओगे ?

तब शेर ने कुछ लज्जित एवं रूआंसा सा होकर कहा—मैं क्या करूँ, मैं आक्रमण करने के लिए अभी तैयार नहीं था, सो वह हाथ से छूट-निकल गया। अन्यथा तो मेरे आक्रमण से हाथी भी नहीं बच सकता। तब शृगाल ने कहा—अब एक बार फिर मैं उसे तुम्हारे पास लाऊँगा। अब तुम आक्रमण के लिए तैयार रहना। सिंह ने कहा भद्र ! जो मुझे प्रत्यक्ष देख गया है, वह फिर कभी भी नहीं आयेगा इसलिए कोई अन्य जानवर की खोज करो। शृगाल ने कहा—तुम्हें इस बात से क्या मतलब? तुम तो केवल तैयार रहो।

इसके बाद शृगाल गदहे के पीछे-पीछे गया और उसे वहीं उसी स्थान पर चरते हुए देखा। तब शृगाल को देखकर गदहे ने कहा—अरे भांजे!

कहो अब फिर कैसे आना हुआ ? मुझे तो तुम मौत के मुँह में ही ले गए थे। वह कौन सा जानवर था जिसके वज्राघात के प्रहार से बड़ी कठिनाई से बच कर निकल आया हूँ ? यह सुनकर शृगाल ने हँस कर कहा—भद्र ! वह तो गर्दभी थी। वह तुम्हें आया देख कर तुम्हारा आलिंगन करने के लिए उठी थी। तुम तो कायरता वश भाग खड़े हुए। किन्तु वह तो तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती। उसने तुम्हें पकड़ने के लिए अपना हाथ तुम्हारी तरफ बढ़ाया था किन्तु तुमने उसे गलत समझा। अतः आओ चलो वह तुम्हारे विरह में अनशन किए पड़ी है। वह कहती है कि यदि लम्बकर्ण मुझे पति रूप में नहीं मिला तो मैं जल में डूब कर या अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्याग दूंगी। मैं उसकी यह करूण दशा नहीं देख सकता। अतः मुझ पर और उस पर कृपा करके मेरे साथ चलो। नहीं तो तुम्हें स्त्री हत्या का पाप लगेगा और फिर भगवान् कामदेव भी तुम्हें श्राप देंगे और क्रोध करेंगे।

तब वह गर्दभ फिर से उसकी बातों पर विश्वास करके उसके साथ चल पड़ा। तब आक्रमण के लिए पहले से ही उद्यत सिंह ने उस लम्बकर्ण को मार डाला। तब शेर उसे खाने से पूर्व, स्नान के लिए शृगाल को रक्षक नियुक्त कर नदी की ओर गया। इधर शृगाल ने भूख की अधीरता के कारण उसके कान और हृदय खा लिए। जब सिंह स्नान से निवृत होकर पूजा-पितृ तर्पण आदि करके लौटा, तो कर्ण और हृदय से रहित गदहे को देखकर गीदड़ से कहा—अरे पापी ! तूने यह तो अनुचित काम किया। इसके कान और हृदय खाकर इसे जूठा कर दिया। तब शृगाल ने उसे नम्रता से समझाया कि यह गदहा तो पहले ही कान और हृदय से रहित था। यदि इसके कान और हृदय होते तो यह ध्यान से बात सुनता और समझता और दुबारा यहाँ कदापि नहीं आता।

तब शृगाल की बातों पर विश्वास करके सिंह ने उसे निश्शंक होकर गीदड़ के साथ बाँट कर उस मारे हुए गदहे को खाया। अतः ईश्वर प्रदत्त इन्द्रियों का समुचित प्रयोग कर विवेक से काम करना चाहिए। गदहा तो वैसे ही मूर्खता का प्रतीक है। अतः शृगाल की भांति धूर्तों से सावधान रहना चाहिए ताकि कोई तुम्हें गदहा न बना सके।

'स्वभावो दुरतिक्रमः'

37

स्वभाव को त्यागना कठिन है।

किसी वन प्रदेश में सिंह दम्पति रहते थे। कुछ समय बाद सिंही ने दो शावकों को जन्म दिया। सिंह भी प्रतिदिन शिकार करके, पशु सिंहनी को लाकर देता था। एक दिन उसे कोई भी पशु शिकार में नहीं मिला। वन में घूमते-घूमते सूर्यास्त हो गया। अन्धकार में लौटते हुए उसे एक गीदड़ का बच्चा मिला। दयावश उसे न मार कर, बालक है, बालकों के साथ ही खेलेगा-खायेगा अतः यत्नपूर्वक दोनों दाड़ों के बीच में कोमलता से पकड़कर जिंदा ही सिंहनी को सौंप दिया।

सिंह ने सिंहनी को कहा प्रिये ! आज दिन भर कोई पशु नहीं मिला लौटते समय यह बालक मिला तो मैंने इस बालक को मारना उचित नहीं समझा और तुम्हें ऐसे ही सौंप दिया है। अब आप चाहो तो इससे अपनी भूख शान्त कर लो। यह सुनकर सिंही बोली—हे स्वामी ! जब आपने इसे बालक समझकर नहीं मारा तो मैं ही क्यों इस मासूम बालक को मार कर पाप की भागी बनुँ। आज से यह मेरा तृतीय पुत्र होगा। इस प्रकार वह सिंही उसे भी अपने दोनों पुत्रों के समान ही पालने लगी।

इस प्रकार वे तीनों बच्चे एक-दूसरे की जाति को न जानते हुए, साथ-साथ खेलते-कूदते हुए अपना समय व्यतीत करते हुए बढ़ने लगे। एक बार जंगल में कोई जंगली हाथी घूमता हुआ आया। उसे देखकर वे दोनों शेर के बच्चे क्रुद्ध होकर उस जंगली हाथी पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हुए तब शृगाल पुत्र ने कहा—यह हाथी तो तुम्हारे कुल का शत्रु है। यह कह कर वह घर की ओर भाग गया। वे दोनों भी बड़े भाई के भयभीत होने से हतोत्साहित हो गए।

उन दोनों सिंह शावकों ने घर आकर अपने माता-पिता के सामने अपने बड़े भाई शृगाल की सारी करतूतें हँसते-हँसते बताई कि—यह हाथी को देखकर दूर से ही भाग कर घर आ गया। वह भी यह सुन कर अत्यन्त

क्रुद्ध हुआ तथा उसके ओष्ठ फड़कने लगे, आँखे लाल हो गई और भौंहें तान कर उनको धमकाते हुए कठोर वचन कहने लगा।

तब सिंहनी ने एकान्त में उसे ले जाकर समझाया—वत्स ! ऐस मत कहो, ये तुम्हारे छोटे भाई हैं। इस पर वह और भी अधिक क्रोध से भरकर उनसे बोला—शूरता, रूप, विद्याभ्यास, चतुराई में मैं क्या तुमसे कम हूँ, जो तुम मेरा उपहास करते हो इसलिए मैं तुम्हें अवश्य मारूँगा। यह सुनकर उसका जीवन चाहती हुई सिंहनी ने पुनः प्रेम से उसे समझाया—हे पुत्र ! तुम शूरवीर तथा दर्शनीय भी हो परन्तु जिस वंश में तुम उत्पन्न हुए हो, उसमें हाथी का शिकार नहीं किया जाता है। इसलिए ध्यानपूर्वक सुनो—हे वत्स ! तुम एक शृगाल पुत्र हो। मैंने दया और प्रेमवश अपना दूध पिलाकर तुम्हें पाला है। अतः जब तक ये दोनों तुम्हें शृगाल न जानें उससे पूर्व ही तुम भागकर अपनी जाति में मिल जाओ। नहीं तो कभी इनसे मारे जाओगे।

वह शृगाल पुत्र भी सिंहनी के वचन सुनकर भयभीत हो तुरन्त भाग गया।

38

व्याघ्रचर्म-गर्दभ कथा

किसी नगर में शुद्धपट नामक धोबी रहता था। उसके पास एक गदहा था, किन्तु वह भरपेट घास न मिलने के कारण अत्यन्त कमजोर हो गया था। एक बार धोबी को कहीं से व्याघ्रचर्म मिली। उस व्याघ्रचर्म को प्राप्त कर धोबी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। धोबी ने सोचा—यह तो बहुत अच्छा हुआ। इस व्याघ्रचर्म को ओढ़ा कर मैं अपने गदहे को रात के समय जौ के खेत में छोड़ दिया करूँगा। इससे इसे बाघ समझकर खेत वाले इसे अपने खेत से न निकालेंगे। ऐसा करने से रात्रि में इच्छानुसार भरपेट जौ खाया करता था और प्रातः धोबी उसे अपने घर पर ले आता था और अपने काम पर बिना भोजन ही ले जाता था।

कुछ दिनों में गदहा खूब ही मोटा ताजा हो गया कि कठिनाई से काबू आता था। अतः धोबी उसे अक्सर खुला ही छोड़ देता था। खेतों में चरते हुए एक दिन उस मदमस्त गधे ने दूर से किसी रासभी-गर्दभी को रेंकते हुए सुना। गर्दभी को रेंकता सुनकर गदर्भ भी उच्च स्वर में रेंकने लगा। उसके रेंकने के स्वर से खेतों के मालिक जाग गए और उसे व्याघ्र-चर्म ओढ़ा गदहा जानकर उसे डण्डों से पीट-पीट कर मार डाला। अतः व्यक्ति की क्रियाओं और शब्दों से ही उसका स्वभाव एवं योग्यता का पता चलता है—

Works and words reflect the person.

39

महाचतुरक शृगाल कथा

किसी वन में महाचतुरक नामक एक शृगाल रहता था। एक बार उसने वन में स्वयं मरा हुआ हाथी पाया। वह उसके चारों तरफ घूम-घूम कर जाँच पड़ताल करता रहा लेकिन उसकी चमड़ी न काट सका। इसी बीच कोई सिंह इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसको आया देखकर शृगाल पृथ्वी पर माथा टेक कर तथा करकमल जोड़कर नम्रतापूर्वक बोला—हे स्वामिन् ! मैं आपका सिपाही-पहरेदार हूँ, तथा आपके लिए इस हाथी की रक्षा कर रहा हूँ, आप इसका भक्षण करें। उसे प्रणाम करते देखकर सिंह ने कहा—मैं कभी भी दूसरों के द्वारा मारा हुआ प्राणी नहीं खाता। इसलिए यह मरा हुआ हाथी तुम्हें ही ईनाम के तौर पर देता हूँ। यह सुनकर शृगाल आनन्दपूर्वक बोला—प्रभु के लिए अपने भृत्यों के प्रति ऐसा व्यवहार उचित ही है।

शेर के चले जाने के बाद वहाँ कोई बाघ आया। उसे देख शृगाल ने सोचा—एक दुष्ट को तो मैंने किसी तरह नम्रता से दूर किया, अब इसे कैसे हटाऊँ ? यह शूर है, अतः भेद के बिना वश में नहीं आयेगा। कहा भी गया है—जहाँ साम अथवा दाम का प्रयोग न किया जा सके वहाँ भेद का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि ऐसे में भेद ही वश में लाने का अच्छा उपाय है। क्योंकि सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति भी भेद से ही वश में किया जा सकता है, जैसे कि अत्यन्त निर्मल, बिना विंधा हुआ, गोल और सुन्दर मोती भी बिंधने पर बन्धन में पड़ जाता है हार में पिरो कर। यह सोचकर उस ने व्याघ्र के सामने जाकर गर्दन उठाकर तत्परता से कहा— हे मामा ! यहाँ आप मौत के मुँह में आ गए हैं। अभी यह हाथी शेर के द्वारा मारा गया है और वह मुझे इसकी रखवाली में नियुक्त कर स्नान के लिए गया है। जाते समय मुझे आदेश दिया है कि यदि कोई व्याघ्र आए तो मुझे चुपचाप सूचित कर देना क्योंकि मुझे यह वन, व्याघ्रों से खाली कर देना है क्योंकि कुछ समय पहले एक बाघ ने मेरे द्वारा

मारे हुए हाथी को खाकर जूठा कर दिया था। उस दिन से मुझे बाघों के प्रति बड़ा क्रोध है। यह सुनकर व्याघ्र ने भयभीत हो उससे कहा—भांजे ! मुझे प्राणों की दक्षिणा दो। वह चाहे कितनी भी देर में आए, तो भी तू मेरे सम्बन्ध में कोई बात उससे न कहना। यह कहकर वह तुरन्त भाग गया।

व्याघ्र के चले जाने के बाद कोई द्वीपी-चीता वहाँ आया। उसे देखकर गीदड़ ने विचार किया—यह चीता है, इसकी दाढ़ें मजबूत हैं। इससे इस हाथी का चमड़ा कटवा लूँ। यह सोचकर उसने चीते से कहा—हे भाँजे! बहुत दिनों बाद दिखाई दिए हो। तुम मुझे भूखे से मालुम पड़ रहे हो। तुम तो मेरे अतिथि हो। आए हुए अतिथि का सर्वप्रथम भोजन से ही सत्कार करना चाहिए, सिंह द्वारा मारा हुआ यह हाथी यहाँ पड़ा है और मैं उसके द्वारा नियुक्त रखवाला हूँ। जब तक वह न आए तब तक इसका माँस खाकर तृप्ति कर लो और जल्दी से यहाँ से चले जाओ।

तब द्वीपी ने कहा—मामू ! यदि यह बात है तो मुझे इसके माँस से कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि मनुष्य जिन्दा रहे तो सैंकड़ों अच्छाईयाँ देखता है। अतः मुझे यह मरा हुआ हाथी नहीं खाना चाहिए।

तब खाने में संकोच करने वाले उस चीते को गीदड़ ने कहा—अरे अधीर मत हो। तू निश्चिन्त होकर खा। दूर से ही उसके आगमन के बारे में तुझे बता दूँगा। तब चीते द्वारा वैसा किए जाने पर खाल को कटा हुआ जान कर शृगाल ने जोर से कहा—भांजे ! भागो, भागो, वह शेर आ रहा है। यह सुनते ही चीता दूर भाग गया।

अभी गीदड़ ने कुछ खाना ही शुरू किया था कि अत्यन्त क्रोधी दूसरा शृगाल वहाँ आ पहुँचा। तब उसे स्वजाति का और अपने से अधिक पराक्रमी जानकर उसने सोचा कि—उत्तम को नम्रता से, शूरवीर को परस्पर फूट डलवा कर, नीच को थोड़ा सा कुछ देकर तथा समान शक्ति को पराक्रम से वश में करना चाहिए।

इसके बाद गीदड़ ने उसके सामने जाकर अपने दाँड़ों से माँस को काट-काट कर उस माँस को इधर-उधर, सब ओर बिखेर दिया ताकि वह भी खाकर सन्तुष्ट हो जाए और स्वयं भी चिरकाल तक शेष माँस सुखपूर्वक खाया।

40

ब्राह्मणी एवं नेवले की कथा

किसी नगर में देवशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। उसके घर जब पुत्र जन्म हुआ तभी नेवली ने भी एक शिशु को जन्म दिया लेकिन बच्चे को जन्म देने के बाद मर गई। तब ब्राह्मणी ने ही उस शिशु को दूध पिला-पिला कर पाला। नेवले पर पुत्रवत् स्नेह होने पर भी थोड़ा शंकित सी रहती थी कि कहीं यह बालक का अनिष्ट न कर दे क्योंकि पुत्र स्नेह माँ को अन्य सभी सम्बन्धों से अधिक सुखकर और शान्तिप्रद होता है।

एक दिन ब्राह्मणी कुएँ से जल लाने के लिए जाने से पहले ब्राह्मण को शय्या के ऊपर सोए हुए बालक के बारे में कहकर, कि नेवले से सावधान रहे, वह चली गई। यद्यपि वह उसकी रक्षा ही करेगा क्योंकि घर में पाला हुआ पशु है तथापि पशु प्रकृति से शिशु माँस के लोभी होते हैं।

ब्राह्मणी के चले जाने के बाद तभी ब्राह्मण को ब्रह्म-भोज का निमन्त्रण मिला। उसने सोचा यदि विलम्ब से गया तो उत्तम भोजन और दान दक्षिणा से वञ्चित रह जाऊँगा। अतः नेवला तो है ही उसकी देखभाल के लिए और ब्राह्मणी भी आ जाएगी। ऐसा सोचकर ब्राह्मण ब्रह्म-भोज के लिए, नेवले पर भरोसा करके, चला गया।

ब्राह्मण के चले जाने पर काला सर्प बिल से निकला। नेवला सर्प का जन्मजात वैरी होता है। नेवले ने ज्यों हि कृष्णसर्प को देखा, तो उसे बलपूर्वक दबोचकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। रक्त से लथपथ मुख-हाथ-पाँव वाला नेवला साँप को मार कर बाहर किसी के आने की आहट पाकर बाहर आया तो ब्राह्मणी रक्त से लिप्त उसके शरीर को देखकर समझी कि अवश्य ही इसने बालक को खा लिया और क्रोध में भर कर पानी से भरा घड़ा उस नेवले पर पटक दिया। नेवले को मार कर ब्राह्मणी ने कमरे में प्रवेश किया तो बालक को स्वस्थ, हंसता खेलता पाया और कृष्णसर्प को पास में ही टुकड़े-टुकड़े हुए देखा।

यह सब देख ब्राह्मणी तुरन्त समझ गई कि इस काले साँप को मारने से ही नेवला रक्तलिप्त मुख-हाथ-पाँव वाला था। मैने शीघ्रता में ही बिना भली प्रकार देखे–समझे इस स्वामीभक्त नेवले को मार दिया। तभी ब्रह्म-भोज से लौटे हुए ब्राह्मण ने भी तुरन्त सारी घटना को समझते हुए कहा–

बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताए,

काम बिगारे आपनो जग में होत हसाय, जग में होत हसाय,

चित्त में चैन न पाए, खान-पान-राग-रंग मन ही न भाए।

विद्यायाः बुद्धिरूत्तरा

41

व्यावहारिक ज्ञान शास्त्र ज्ञान से बेहतर है

पुस्तकीय ज्ञान से बढ़कर (व्यावहारिक ज्ञान) बौद्धिक ज्ञान है। चार वेद पंडित थे। किन्तु व्यावहारिक ज्ञान से शून्य, निरे मूर्ख थे। चौथे ब्राह्मण को शास्त्र ज्ञान तो नहीं था किन्तु बुद्धिशून्य नहीं था।

किसी समय चारों ने परस्पर तय किया कि देशान्तर में जाकर अपने शास्त्र ज्ञान से किसी राजा को सन्तुष्ट करके धनार्जन किया जाए। ऐसा विचार कर चारों धनार्जन के लिए चल पड़े। मार्ग में सर्वप्रमुख सर्वाधिक विद्वान् ब्राह्मण कुमार ने कहा—यह चौथा ब्राह्मण कुमार तो निरा मूर्ख है इसे तो जरा भी शास्त्र ज्ञान नहीं है और राजा ज्ञानशून्य को धन नहीं देंगे और मैं भी अपने हिस्से में से धन नहीं दूँगा। अतः इसे घर लौट जाना चाहिए।

तदनन्तर तीसरे ने कहा—भाई ! ऐसा करना उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि हम सब बाल्यावस्था से एक ही साथ रहते-खेलते-खाते आएँ हैं। इसलिए इस अवसर पर भी साथ ही रहेगा-चलेगा। हमारी कमाई में भी समानरूप से ही हिस्सेदार होगा। क्योंकि कहा भी गया है—यह अपना है, यह पराया है ऐसा तो नीच विचार वाले लोग करते हैं किन्तु उदारचित्त लोग के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही अपना परिवार है।

अतः इसको भी साथ ही चलने दो। तदनन्तर उसे साथ चलने की अनुमति देने पर, मार्ग में जाते हुए गहन वन में कुछ हड्डियों का ढ़ेर आस-पास, इधर-उधर पड़ा-बिखरा हुआ देखा। तब उनमें से एक ने कहा—अरे ! आज अपनी विद्या की परीक्षा की जाए। यह कोई मरा हुआ शेर है। तो आओ, विद्या के प्रभाव से इसे जिलावे। मैं हड्डियों को एकत्रित करता हूँ। यह कहकर उसने बड़ी उत्सुकतापूर्वक उन हड्डियों को एकत्रित किया। दूसरे ने उन हड्डियों पर चाम, रक्त, मांस चढ़ाया। इसके बाद जब तीसरा उसमें प्राण डालने का यत्न करने लगा तो चौथे, ने जो सुबुद्धि

था, कहा—ठहरो, ऐसा मत करो, तुम शेर को जीवित कर रहे हो। वह जीवित होकर हम सबको खा जाएगा।

सुबुद्धि के इस प्रकार मना करने पर भी शेर को जिलाने वाला विद्वान् ब्राह्मण बोला—अरे मूर्ख ! धिक्कार है तुझे। मै। अपनी विद्या को व्यर्थ नहीं कर सकता। तब सुबुद्धि ने कहा—थोड़ा ठहरो, पहले मैं वृक्ष पर चढ़ जाऊँ। तदनन्तर सुबुद्धि के वृक्ष पर चढ़ जाने के बाद उसने ज्यों ही सिंह में प्राण संचार किया त्यों ही जीवित हुए सिंह ने उन तीनों बुद्धिहीन ब्राह्मणों को मार कर खा लिया। शेर के चले जाने के बार सुबुद्धि भी वृक्ष से उतर कर अपने घर चला गया। अतः, यद्यपि विद्या अच्छी होती है किन्तु विद्या के साथ-साथ बुद्धि के प्रयोग से व्यावहारिक ज्ञान अधिक बेहतर-अच्छा होता है क्योंकि शास्त्रज्ञान में कुशल होने पर भी व्यक्ति यदि लोकव्यवहार से अनभिज्ञ है तो इन ब्राह्मणों की तरह ही उपहास को प्राप्त होता है।

42

मूर्ख पण्डितों की कथा

किसी नगर में चार ब्राह्मण परस्पर मित्रतापूर्वक रहते थे। बचपन में ही उनके मन में, किसी दूसरे देश में जाकर, विद्योपार्जन की इच्छा हुई और उन्होंने कन्नौज में जाकर विद्यार्जन बारह वर्ष तक दत्तचित होकर किया। अध्ययन समाप्त कर गुरूदक्षिणा गुरू जी को प्रदान कर अपने ग्रन्थ लेकर वापिस अपने देश की ओर चल पड़े।

मार्ग में उन्हें दो सड़कें दिखाई दीं। अब उन्हें निर्णय करने में शंका हुई कि किस मार्ग से जाया जाए। तब एक ब्राह्मण ने ग्रन्थ खोल कर पढ़ा—'महाजनो येन गतः स पन्थाः' अर्थात् महापुरूष जिस रास्ते से जाते हैं, वही उचित मार्ग है, उसी मार्ग पर चलना चाहिए। ग्रन्थ से ऐसा पढ़कर निर्णय करके जिस मार्ग से कुछ लोग जा रहे थे, उसी मार्ग से उनके पीछे-पीछे चल दिए।

अभी उन महाजनों के साथ कुछ दूर गए थे कि उन्हें वहाँ श्मशान भूमि पर एक गधा दिखाई दिया। तब फिर असमंजस में पढ़ गए कि अब क्या करें ? तब दूसरे ब्राह्मण ने ग्रन्थ खोलकर पढ़ा—

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे।
राजद्वारे शमशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।

अर्थात् उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष एवं शत्रुओं के उपद्रवकाल में, राजसभा और श्मशान में जो साथ होता है वही सच्चा बन्धु है।

अतः यह शमशान में प्राप्त हुआ हमारा बन्धु है। उसकी बात सुन कर कोई उसे गले लगाने लगा और कोई उसके पैर धोने लगा। फिर तभी उन्हें तीव्र गति से जाता हुए एक ऊँट दिखाई दिया। उसे देखकर वे ब्राह्मण फिर सोच में पड़ गए कि अब यह क्या है ? हमें क्या करना चाहिए ? तब तीसरे पण्डित ने धर्म ग्रन्थ खोल कर पढ़ा—धर्मस्य त्वरिता गतिः —धर्म की गति तीव्र होती है। तब तो निश्चय ही यह धर्म है। तदनन्तर चौथे ने कहा मित्र को धर्म के साथ जोड़ देना चाहिए।

ऐसा विचार कर उन पण्डितों ने गदहे को ऊँट के गले में बाँध दिया। जब यह समाचार गधे के मालिक को मिला तब उस गदहे का मालिक धोबी उन पण्डितों को पीटने वहाँ पहुँचा। दूर से ही लट्ठ लेकर अपनी ओर आते धोबी को देखकर ब्राह्मण वहाँ से भाग खड़े हुए।

जब वे चारों ब्राह्मण आगे बढ़े तो एक नदी मिली। नदी की जलधारा में बह कर आते हुए एक पलाश के पत्ते को उन्होंने देखा। तब उनमें से एक ब्राह्मण ने कहा कि आने वाला पत्ता हमें नदी पार करा देगा। ऐसा कह वह मूर्ख पण्डित नदी में कूद पड़ा। जब नदी की जलधारा में बहकर जाने लगा तो उसकी चोटी पकड़ कर दूसरे पण्डित ने कहा—बुद्धिमान् पुरूष सर्वनाश की स्थिति उत्पन्न होने पर उसका आधा ही प्राप्त कर अपना काम चला लेते हैं क्योंकि सर्वनाश तो अत्यन्त दुस्सह होता है। ऐसा कहकर उसने धारा में बहते हुए उस पण्डित का सिर काट दिया।

आगे जाने पर वे मूर्ख पण्डित एक गाँव में पहुँचे। गाँव वालों ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया और उन्हें पृथक्—पृथक् अपने घरों में भोजन कराया। उनमें से एक को घी-शर्करा और दूध में पकी सेंवई परोसी गई। उसे देखते ही पण्डित ने विचार किया—दीर्घ सूत्री विनष्ट हो जाता है ऐसा कहकर वह भोजन छोड़कर चला गया। दूसरे ब्राह्मण को भोजन में मण्डा दिया गया। तब उसने सोचा—जो वस्तु अत्यन्त विस्तृत-फैली हुई हो वह आयुषवर्धन नहीं करती। ऐसा कहकर वह भी भोजन छोड़कर चला गया। तब तीसरे ब्राह्मण को भोजन में बड़ा दिया गया। वहाँ उस पण्डित ने कहा—'छिद्रेषु अनर्थाः बहुली भवन्ति'—अर्थात् छिद्रों से और अन्य दोष बढ़ जाते हैं, ऐसा कहकर वह भोजन छोड़कर चला गया। इस प्रकार वे तीनों ही मूर्ख पण्डित भूखे ही रह गए और सभी ग्रामवासियों से अनादृत भी हुए।

अतः इस सबसे सुस्पष्ट ही है कि शास्त्र ज्ञान में कुशल भी व्यक्ति लोकाचार से अनभिज्ञ होने पर इन मूर्ख पण्डितों की तरह उपहास को प्राप्त होते हैं।

43

गदहे और गीदड़ की कथा

किसी स्थान पर उद्धत नामक गदहा रहता था। वह दिनभर तो धोबी के घर में बोझा ढ़ोने का काम करता था लेकिन रात में मनमानी करता था और इधर–उधर जहाँ कहीं भी घूमता था। फिर प्रातः धोबी के द्वारा ढूंढ़े जाने और बाँधे जाने के भय से स्वयं ही समय पर लौट आता था। किसी दिन रात्रिकाल में खेतों में घूमते हुए गदहे की गीदड़ से मित्रता हो गई।

खेतों में खूब फल-सब्जी खाने से गदहा खूब हृष्ट-पुष्ट हो रहा था। अब वह शृगाल के साथ मिल कर खेतों के घेरे को तोड़ कर खेतों में घुस कर खूब ही खीरा-ककड़ी-खरबूजा आदि खाया करता और भरपेट खा लेने के बाद सुबह होते ही दोनों, गदहा और गीदड़ अपने-अपने स्थानों को लौट जाया करते थे।

किसी रात को खेतों की बीच में ही मस्ती में गदहे को गाना गाने की सूझी। उसने गीदड़ से कहा–भांजे ! देखो रात कैसी सुहावनी है और मैं गीत गाना चाहता हूँ। अच्छा बताओ, कौन से राग में गाना गाऊँ? तब शृगाल ने कहा–मामा ! यह व्यर्थ की विपत्ति क्यों खड़ी कर रहे हो ? इस समय हम चोरी से खेतों में घुस कर खा रहे हैं। कहा भी गया है कि–खांसी से पीड़ित व्यक्ति को चोरी नहीं करनी चाहिए और रोगग्रस्त व्यक्ति को जीभ का चटोरापन त्याग देना चाहिए, इसी से व्यक्ति सुखपूर्वक जीवित रह सकता है।

इसके अतिरिक्त तुम्हारा गाना मधुर स्वर वाला नहीं है और शंखध्वनि के समान दूर तक सुनाई देता है। खेतों में सोए हुए रक्षक तुम्हारी गीतलहरी से जाग कर तुम्हें पकड़ कर पीटेंगें और बाँध देंगें। अतः चुपचाप स्वादिष्ट अमृत तुल्य इन ककड़ियों को ही खाओ, गाने की उतावली मत करो।

शृगाल की बातें सुनकर गदहे ने कहा—तुम जंगली होने के कारण गाने का आनन्द नहीं जानते हो, इसीलिए ऐसी बात कहते हो। तदनन्तर स्वयं को अच्छा संगीतज्ञ सिद्ध करने के लिए संगीत की अनेकानेक शाखाएँ एवं उनका महत्व कह सुना डाला।

इतना संगीतोपाख्यान सुनाने के पश्चात् गधे ने पुनः कहा—भांजे ! इतना ज्ञान रखने पर भी तुम मुझे संगीत से अनभिज्ञ बता रहे हो और मुझे गाने से रोक रहे हो। तब शृगाल ने कहा—भाँजे ! यदि ऐसी बात है तो मैं खेत के प्राचीर से बाहर बैठ इस खेत के रखवाले किसान को देखता हूँ, आप निश्चिन्त होकर गाएँ।

इस प्रकार शृगाल के बाहर चले जाने के बाद गधे ने जोर से रेंकना शुरू कर दिया। उसकी आवाज सुनकर किसान क्रोध से दाँत पीसता हुआ दौड़ा। खेत में पहुँचने पर गधे को डण्डे से इतना पीटा कि वह पृथ्वी पर अधमरा होकर गिर पड़ा।

क्षेत्ररक्षक ने साथ ही उसके गले में उखल लटका दिया कि वह उसके बोझ से बोझिल होने पर कुछ खा न सके। तब वह गधा अपने जातीय स्वभाव के कारण उस मार की वेदना को भूल कर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ और उलूखल का बोझ गले से ढ़ोते हुए खेत की चारदिवारी को तोड़ता हुआ भाग खड़ा हुआ। तब शृगाल ने दूर से ही इस प्रकार भागते हुए गधे को देखकर हंसते हुए कहा—हे मामा ! क्या गले में पड़ी हुई मणि तुम्हें गाने के पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुई है ? अतः गधे की भांति जिसके पास बुद्धि न हो और मित्र की सलाह न माने तो उसकी दुर्गति ही होती है।

44

मन्थर नामक जुलाहे की कथा

किसी नगर में मन्थर नामक जुलाहा रहता था। एक दिन जब वह कपडा बुन रहा था तो उसके साधनभूत यन्त्र टूट गए। टूटी हुई खड्डी को पुनः बनाने के लिए कुल्हाड़ी लेकर जंगल में लकड़ी लाने के लिए चल पड़ा। इधर-उधर घूमता हुआ वह जब समुद्र के किनारे पहुँचा तो वहाँ उसने शीशम का बड़ा वृक्ष देखा।

तदनन्तर वृक्ष को देखकर उसने सोचा इसे काटने से मुझे खड्डी के उपकरणों के लिए पर्याप्त लकड़ी मिल जायेगी। ऐसा सोचकर जब जुलाहे ने वृक्ष पर कुल्हाड़ी चलाई तो उस शीशम के वृक्ष पर निवास करने वाले यक्ष ने सम्मुख उपस्थित होकर कहा—भाई ! इस वृक्ष पर मेरा निवास है। अतः इसे मत काटो, क्योंकि इस वृक्ष पर मैं सानन्द रहता हुँ मुझे समुद्र की तरंगों के स्पर्श से शीतल वायु का बड़ा सुख प्राप्त होता है।

यक्ष की बात सुनकर जुलाहे ने कहा—भाई ! मैं क्या करूँ ? वस्त्र बुनने के लिए आवश्यक लकड़ी के साधन बिना, मेरा परिवार भूखा मर रहा है। आप इस वृक्ष को छोड़कर अन्यत्र अपना निवास बना लीजिए। मुझे अपनी आजीविका और परिवार के भरण पोषण के लिए वृक्ष की लकड़ी अवश्य ही काटनी होगी।

तब यक्ष ने विनती की—मैं तुम्हें इसके बदले एक वरदान देता हूँ कि तुम अपनी इच्छित कोई भी चीज माँग लो और इस वृक्ष की रक्षा करो। तब जुलाहे ने कहा—यदि ऐसी बात है, तो मैं अपने घर जाकर अपने मित्र और पत्नी से पूछ कर आता हूँ तभी आपसे माँगूगा।

जुलाहे की बात सुनकर यक्ष ने 'तथास्तु' कहकर उसे घर जाने की अनुमति दे दी। तदनन्तर जुलाहा प्रसन्न होकर घर लौटने लगा तो गाँव

में प्रवेश करते समय उसने अपने मित्र नाई को देखा और प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया।

जुलाहे ने नाई से पूछा—कि मुझे यक्ष के वायदे के अनुसार क्या वरदान मांगना चाहिए ? नाई ने कहा—मित्र ! यदि ऐसी बात है तो कोई राज्य मांग लो जिससे तुम राजा हो जाओगे और मैं तुम्हारा मन्त्री बन जाऊँगा। इस प्रकार हम दोनों ही इसी लोक में परलोक सुख का आनन्द प्राप्त कर लेंगे।

तदनन्तर जुलाहे ने कहा—मित्र ! घर जाकर पत्नी से भी पूछता हूँ कि वह क्या राय देती है। मेरी पत्नी पतिपरायणा है तो मैं भी उसके परामर्श के बिना कोई काम नहीं करता। नापित से ऐसा कहकर जुलाहा अपनी पत्नी के पास आकर बोला—प्रिये ! आज एक यक्ष मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे एक वरदान देना चाहता है। बताओ उससे क्या माँगू, मेरा नापित मित्र मुझसे कहता है कि राज्य माँग लो।

यह सुनकर जुलाहे की पत्नी ने कहा—आर्यपुत्र ! नाई को अक्ल होती ही नहीं है। उसका कहना मानने से आप मुसीबत में फंस जायंगे। राज्य बड़ा कष्टदायी होता है। राजकाज में संधि-विग्रहादि कार्य अत्यन्त क्लिष्ट-दुरूह होता है और राजा को जीवन पर्यन्त सुख नहीं मिलता। देखो राज्य के लिए राम को घर छोड़कर जाना पड़ा, पाण्डवों को वन में जाकर निवास करना पड़ा था। महाराजा नल को राज्य के लिए महान् कष्ट उठाना पड़ा। शिखंडक को राज्यमद से चाण्डाल होना पड़ा। राज्य के कारण दशानन मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसलिए बुद्धिमान् पुरूष कभी भी राज्य की इच्छा न करे। जिस राज्य के लिए सहोदर भाई एवं पुत्र आत्मीयता का त्याग कर राजा को मार डालने की इच्छा करता है, उस राज्य को दूर से ही त्याग देना चाहिए।

जुलाहे ने अपनी पत्नी की बात सुनकर कहा—प्रिये ! तुम ठीक कहती हो। अच्छा तुम्ही बताओं उससे क्या माँगू ? तदनन्तर स्त्री ने कहा—तुम एक कपड़ा प्रतिदिन तैयार तो करते ही हो जिससे घर का सारा खर्चा चलता है। तुम जाकर उनसे दो हाथ और एक सिर और मांग लो, जिससे तुम दो वस्त्र बना सकोगे। एक वस्त्र आगे से और दूसरा पीछे से। एक

के दाम से पूर्ववत् घर का खर्च चलेगा तथा दूसरे के मूल्य से अन्य खर्चे। ऐसा करते हुए हम अपनी जाति में प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर लेंगे और यह लोक और परलोक दोनों ही सुधर जायेंगे।

स्त्री की बात सुनकर जुलाहे ने प्रसन्न हो कर कहा—प्रिये ! तुम ठीक कहती हो, मैं तुम्हारी ही बात मानुँगा। तदनन्तर जुलाहे ने यक्ष के पास जाकर कहा—यदि आप मेरी अभिलाषा पूरी करना चाहते है तो मुझे दो हाथ और एक सिर और प्रदान करें। यक्ष ने उसे वैसा ही किया और दो हाथ और एक सिर और प्रदान कर दिए। तब यह जुलाहा खुशी-खुशी घर लौटने लगा। मार्ग में लोगों ने यह राक्षस है, यह समझते हुए लाठी और पत्थरों से इतना मारा कि वह वहीं मार्ग में ही मर गया।

निष्कर्षतः, जिसके पास स्वयं बुद्धि-समझ नहीं है और वह अपने हितैषी मित्र-बन्धु की भी सलाह-सुझाव-उपाय न माने तो अवश्य ही संकट में पड़ जाता है और मूर्ख समझा जाता है और समाज में अनादर पाता है।

अनागततीं चिन्तां करोति यः हास्यपदवीं याति

45

शेखचिल्ली के मनसूबे और उसके दुष्परिणाम

किसी नगर में स्वभावकृपण नामक ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा से प्राप्त सत्तु को एकत्रित कर एक घड़ा भर लिया था और घडे को खूँटी पर टाँग कर उसके नीचे अपनी चारपाई बिछा कर टकटकी लगा कर लगातार देखता हुआ विचार करता था—अब यह घड़ा सत्तू से भर गया है। अब यदि अकाल पड़ा तो दुर्भिक्ष के दुर्दिनों में यह सौ रूपए का बिकेगा और तब मैं उन सौ रूपयों से दो बकरियाँ खरीदूँगा। फिर उनसे छः—छः महीने में बच्चे पैदा होने से मेरे पास बहुत सी बकरियाँ हो जायेंगी। फिर उन बकरियों को बेचकर गाएँ खरीदूँगा। इसी प्रकार बहुत सी गाएँ हो जाने पर उनसे भैंस खरीदूँगा। इसी प्रकार बहुत सी भैंस हो जाने पर उन्हें बेच कर घोड़ियाँ खरीदूंगा। तब उन घोड़ियों से बहुत से बच्चे पैदा होने पर बहुत से घोड़े-घोड़ियाँ हो जायेंगे। तब उन्हें भी बेच कर बहुत सा सोना खरीदूँगा। फिर उस स्वर्णराशि-धन दौलत से चौमंजिला भवन बनावाऊँगा। मेरी उच्च अट्टालिका को देखकर कोई ब्राह्मण अपनी सुन्दर सुशील कन्या मुझे प्रदान करेगा। उससे जिस पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी उसका नाम सोमशर्मा रखूँगा। जब वह घुटने के बल चलने लगेगा और मेरे पास चलकर आएगा तो ब्राह्मणी से उसे पकड़ने-संभालने के लिए कहूँगा। तब वह भी घर के कामकाज की व्यस्तता के कारण यदि उस बालक को नहीं संभालेगी तो उसे ऐसी लात मारूँगा की उसकी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जायेगी। ऐसा सोचते हुए उसने जो जोर से लात चलाई से सत्तू का घड़ा धरती पर गिर कर चूर-चूर हो गया और सत्तू सारे में बिखर कर धूल-मिट्टी-कंकर पत्थर वाला होने से खाने योग्य भी नहीं रह गया। साथ ही, सत्तू के सिर पर गिरने से सत्तू से लथपथ वह ब्राह्मण भूत सा हो गया।

अतः अनावश्यक चिन्ता और मनोरथ पालने से व्यक्ति ध्वस्त-मनोरथ वाला होकर कभी भी जीवन में सफलता प्राप्त नहीं करता। व्यक्ति यदि मन की चंचलता के दुष्परिणाम को सोचे समझे बिना जो भी कार्य सहसा कर बैठता है उससे कष्ट ही होते हैं।

46

चन्द्रभूपति कथा

किसी नगर का भूपति-राजा चन्द्र था। उसके पुत्र नित्य ही महल के पालतु वानरों से खेलते थे। उस वानर समूह को स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ भी खिलाए जाते थे। उस वानर समूह का अधिपति-मुखिया, शुक्र-बृहस्पति और चाणक्य के नीतिशास्त्रों का ज्ञाता था और नीति सिद्धान्तों का स्वयं भी पालन करता था और अन्य वानरों को भी वही नीतिशास्त्र का ज्ञान देकर अपने समान ही शास्त्र पारंगत करने का यत्न भी करता था।

उस राजघराने में छोटे-छोटे राजकुमारों को उन पर चढ़ने-सवार होने के लिए भेड़ों का समूह भी पाला गया था। उनमें से एक भेड़ नित्य ही अपनी जिह्वा के चटोरेपन के कारण रात-दिन भोजनालय में घुसने के अवसर की चेष्टा में रहता था और जो कुछ भी पाता था उसे चट कर जाता था। रसोइया उसे देखते ही लकड़ी, मिट्टी का बर्तन इत्यादि जो कुछ भी उनके हाथ में आता था, उसे भगाने के लिए उस पर उछाल देता था।

वानरों के मुखिया ने जब भेड़ की जोर-जबरदस्ती और हुदड़ंगबाजी देखी तो चिन्तित हो सोचने लगा कि भेड़ और रसोइए के बीच होने वाला यह हुदड़ंग कभी बड़े विनाश का कारण बन सकता है क्योंकि यह भेड़ अन्न-भक्षण लोभी है और रसोइया भी इतना क्रोधी है कि जो कुछ भी हाथ में आए उसे उस भेड़ पर दे मारता है। दैववश कभी ऐसा भी हो सकता है कि कुछ भी मारने के लिए हाथ में न आने पर जलती हुई लकड़ी को ही चूल्हे से निकाल कर उस पर वार करने से भेड़ के शरीर की ऊन आग को पकड़ ले और जब अपने शरीर की आग को बुझाने और स्वयं को बचाने के लिए इधर-उधर भागे तो सर्वत्र ही आग फैल जाए। साथ ही में घुड़साल भी है। वहाँ प्रचुर मात्रा में घास-फूंस भी रहता ही है। उससे आग और भी भड़क सकती है और सम्भवतः राजा के प्रिय घोड़े भी जल जाएँ।

अश्वशास्त्र शालिहोत्र में इस प्रकार बताया भी गया है कि—घोड़े के जल जाने पर उसके घाव पर वानरों की चर्बी को लगाने से ठीक किया जाता है। निश्चय ही यह दुर्घटना एक न एक दिन होने वाली है। ऐसा विचार कर कर वानराधिपति ने सभी वानरों को बुलाकर समझाया—इस मेष और रसोइए में नित्य प्रतिदिन कलह होता रहता है और यही कलह किसी दिन बड़े विनाश का कारण बन सकता है क्योंकि जिस घर में हर समय कलह रहता हो वहाँ रहने वालों के प्राण भी संकट में पड़ जाते हैं और वह स्थान शीघ्र से शीघ्र छोड़ देना चाहिए।

अतः हम सब वानरों का विनाश काल उपस्थित होने से पहले ही हम लोगों को इस राजघराने को छोड़कर किसी जंगल में चले जाना चाहिए। वानराधिपति के इस वाक्य को सुनकर जवान मदमस्त वानरों ने हंसते हुए कहा कि बुढ़ापे के कारण आपकी बुद्धि भ्रमित हो गई है इसीलिए ऐसी बातें कर रहे हैं। हम लोग स्वर्ग में प्राप्त होने वाले दिव्य भोगों को छोड़कर अन्यत्र नहीं जायेंगे। वनों के कटु-कषाय-तिक्त-क्षार एवं नीरस फल हम क्यों खाएँ जबकि यहाँ हमें राजकुमारों द्वारा स्वयं हाथ से सुस्वादिष्ट भोज्य पदार्थ खिलाएँ जाते हैं। अब हम कदापि वनों में नहीं जायेंगे।

यूथाधिप वानरसमूह की इन बातों को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ और अश्रुपूर्ण नेत्रों से बोला—अरे मूर्खों ! तुम इस सुख के दुःखद अन्त को नहीं जानते-समझते हो। यह स्वादिष्ट फल ही विषवृक्ष के फल के समान ही प्राण घातक होगा और मैं अपनी आँखों से अपने ही कुल का विनाश नहीं देखूगाँ, अतः मैं तो अभी जा रहा हूँ। ऐसा कह कर वह वानराधिपति उन सभी को वहीं छोड़कर चला गया।

इस प्रकार वानराधिपति के चले जाने के उपरान्त एक दिन फिर उसी भेड़ ने पाकशाला में प्रवेश किया। रसोइए ने भी उसे मारने के लिए कोई अन्य वस्तु न मिलने पर जलती हुई लकड़ी से उसे मारा, जिससे उसके शरीर में आग लग गई और दर्द से चिल्लाता हुआ वह घुड़साल में घुस गया। बहुत घास-फूस से युक्त उस अश्वशाला में आग बुझाने के लिए धरती पर लोटने से सारी घुड़साल आग की लपटों से भभकने लगी और घोड़े भी अपने बन्धन तोड़कर हिनहिनाते हुए इधर-उधर दौड़ने

लगे। घोड़ों की इस घुड़दौड़ से सभी लोग व्याकुल हो अपनी रक्षा के लिए यहाँ-वहाँ दौड़ने लगे।

घोड़ों के जलने से दुःखी राजा ने अश्वचिकित्सक वैद्यों से परामर्श हेतू पूछा—आप बताएँ कि घोड़ों की अग्निज्वालाजनित दाह की शान्ति किस उपाय से हो सकती है ? तब उन वैद्यों ने अश्वचिकित्साशास्त्र को पढ़कर बताया—महाराज ! इस विषय में भगवान् शालिहोत्र ने कहा है—अग्नि से जलने पर घोड़ों की दाह को वानरों की चर्बी से, सूर्योदय काल में होने वाले अन्धकार की भांति, नष्ट किया जा सकता है। आप शीघ्र ही इस चिकित्सा को कीजिए जिससे ये घोड़े अग्निदाह के दोष से उत्पन्न मृत्यु से बच जाएँ।

तदनन्तर राजा ने सभी वानरों के वध की आज्ञा दे दी। तब सभी वानर अस्त्र-लाठी-पत्थर आदि के प्रहार से मार डाले गए। जब यूथपति ने अपने पुत्र-पौत्र, भाई-भतीजे, बहन-भाजों आदि सभी सगे सम्बन्धियों की मृत्यु का समाचार सुना तो अत्यन्त दुःखी हुआ और खाना-पीना छोड़कर इधर-उधर एक वन से दूसरे वन में विचरण करते हुए उसने विचार किया कि—मैं इस दुष्ट राजा से अपने वैर का बदला कैसे लूँ।

इधर-उधर भटकने से प्यास से व्याकुल उस वृद्ध वानर ने पानी की खोज में घूमते हुए कमलिनियों के समूह से सुशोभित एक सरोवर देखा। जब उसने सूक्ष्म दृष्टि से देखा तो उसने पाया कि उस सरोवर में प्रवेश करने वाले मनुष्यों के पदचिह्न तो दिखाई पड़ रहे हैं लेकिन उससे निकलने का कोई पदचिह्न नहीं दीख पड़ रहे हैं। इससे स्पष्ट ही ज्ञात हो रहा था कि इस सरोवर में कोई दुष्ट मगरमच्छ अवश्य ही रहता है। अतः मैं तो बाहर से ही कमलनाल से जलपान करूँ।

इस प्रकार जब वह कमलनाल से जलपान कर रहा था तो सरोवर के भीतर से एक भयानक राक्षस निकला। उसके गले में अत्यन्त सुन्दर रत्नों की मात्रा सुशोभित हो रही थी। राक्षस ने वानर को देखकर कहा—हे वानर ! इस सरोवर में जो भी प्रवेश करता है वह मेरा भक्ष्य हो जाता है। किन्तु तुम्हारे समान चतुर-सयाना कोई नहीं देखा क्योंकि तुम जल में प्रवेश किए बिना ही केवल कमल नाल से ही जलपान कर रहे हो।

तुम्हारे इस सयानेपन से मैं बहुत प्रसन्न हूँ तुमसे। तुम्हारी जो भी मनोकामना हो उसे माँग लो मैं उसे अवश्य ही पूरी करूंगा।

तब वानर ने उस मकर-राक्षस से पूछा—तुम्हारे खाने की शक्ति कितनी है ? पानी में प्रवेश करने पर सौ-हजार-दसहजार-लाख-व्यक्तियों को मैं खा सकता हूँ लेकिन पानी के बाहर एक शृगाल भी मुझे जीत सकता है, पीड़ित कर सकता है। यह सुनकर उस वानर ने कहा—एक राजा के साथ मेरा बहुत बड़ा वैर है। यदि तुम इस रत्नमाला को मुझे दे दो तो मैं परिवार सहित उस राजा को लोभाकृष्ट करके यहाँ ला सकता हूँ।

तब राक्षस ने उस वानर की विश्वास योग्य बातें सुनकर उसे रत्नमाला दे दी और कहा—मित्र ! जो तुम्हें उचित प्रतीत हो वह करना। वानर भी रत्नमाला को अपने गले में पहनकर वृक्षों और ऊँचे-ऊँचे महलों पर घूमता हुआ पुरवासियों की नजर में आया। तदनन्तर पुरवासियों ने उससे पूछा—हे यूथपति ! इतने दिनों तक कहाँ रहे और इतनी सुन्दर रत्नमाला आपने कहाँ से पाई ? यह रत्नमाला तो अपनी कान्ति से सूर्य को भी तिरस्कृत कर रही है।

तब वानरपति ने कहा—किसी वन में कुबेर निर्मित एक सुन्दर सरोवर है। उस सरोवर में रविवार को सूर्योदित बेला में जो स्नान करता है वह कुबेर की कृपा से इसी प्रकार की रत्नमाला प्राप्त करता है। तब राजा ने यह समाचार सुना तो उसने यूथपति वानर को बुलवाया और पूछा—यूथाधिप ! क्या यह सत्य है कि किसी स्थान पर रत्नमाला से युक्त कोई तालाब है ? तब यूथाधिपति वानर ने कहा—यह मेरे गले में पड़ी हुई माला से ही आपको विश्वास होना चाहिए। यदि आपको रत्नमाला की आवश्यकता है तो मेरे साथ किसी को भेज दीजिए। उसे मैं सरोवर दिखा दूँगा।

यह सुनकर राजा ने कहा—यदि यह सत्य है तो मैं सबके साथ वहाँ चलूँगा। ऐसा करने से मुझे बहुत सारी रत्न मालाओं की प्राप्ति हो जाएगी। वानर ने कहा—तो ठीक है आप ऐसा ही कीजिए। वानर के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा के साथ उसकी रानियाँ, नौकर आदि सभी रत्नमाला की प्राप्ति के लिए चल पड़े। वह वानराधिप भी पालकी में बैठे

राजा की गोद में प्रेमपूर्वक बैठकर राजा के साथ चला। राजा की इस लोभवृत्ति को देखकर वानर ने मन ही मन सोचा—हे तृष्णे देवि ! तुम्हें नमस्कार। तुम्हारी महिमा के वशीभूत होकर धनवान् व्यक्ति भी अकार्य-दुष्कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं।

तदनन्तर उस सरोवर पर पहुँचने के बाद, वानर ने प्रातः काल होने पर राजा से कहा—देव ! सूर्योदय काल में इस सरोवर में प्रवेश करने से मनोरथ की सिद्धि होती है। इसलिए सभी एक साथ ही इस तालाब में स्नान के लिए प्रवेश करें। बस केवल आप रूक जाएँ। आप मेरे साथ प्रवेश करें, जिससे कि मैं अपने पूर्व परिचित स्थान में आपको ले जाकर असंख्य रत्नमाला दिखा सकूँ।

इस प्रकार सरोवर में प्रविष्ट हुए सभी लोगों को मकर (राक्षस) खा गया। सरोवर में प्रविष्ट हुए उन परिजनों को देर करते देखकर राजा ने वानर से पूछा—यूथाधिप ! हमारे परिजन देरी क्यों कर रहे हैं ? राजा की बात सुनकर वानर शीघ्र ही वृक्ष पर चढ़कर राजा से बोला—अरे दुष्ट राजन् ! पानी के भीतर रहने वाले राक्षस ने तुम्हारे समस्त परिवार को खा लिया है। मैंने तुम्हारे द्वारा किए गए अपने कुलविनाश का बदला ले लिया है। अब तुम चले जाओ। मैंने तुम्हें अपना स्वामी जानकर उस सरोवर में प्रवेश नहीं करवाया क्योंकि कहा भी गया है—मनुष्य को उपकार का बदला उपकार और हिंसा का बदला हिंसा से तथा दुष्टता का बदला दुष्टता से चुकाना चाहिए जैसे के बदले तैसा आचरण करने में कोई दोष नहीं।

तुमने मेरे कुल का विनाश किया तो मैने भी तुम्हारे कुल का विनाश कर दिया। वानर की बात सुनकर क्रोध एवं पश्चाताप से भरकर राजा पैदल ही जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से लौट गया। राजा के चले जाने के बाद राक्षस ने जलाशय से निकल कर वानर से कहा—हे वानर ! कमलनाल से जल पीते हुए तुमने अपनी बुद्धि के प्रभाव से शत्रु का नाश किया मेरा मित्र बनकर और साथ ही अपनी रत्नमाला भी किसी को नहीं दी। निश्चय ही तुम धन्य हो। व्यक्ति अपने कर्मों का फल देर-सवेर अवश्य ही पाता है। अतः उसे सोच विचार कर ही कर्म करना चाहिए।

47

ब्राह्मण बालक और केंकड़े की कथा

किसी नगर में ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण रहता था। किसी कार्यवश दूसरे नगर जाने के लिए तत्पर उस को माँ ने कहा—बेटे अकेले क्यों जा रहे हो? सहायक के रूप में किसी को साथ ले लो। ब्राह्मण पुत्र ने कहा—माँ! डरो मत, मार्ग जो भी कुछ होगा उसे मैं स्वयं ही झेल कर मुकाबला कर कष्ट दूर कर लूंगा।

तदनन्तर माँ ने उसके जाने के दृढ़ निश्चय को जानकर समीप की बावली से एक कर्कट लाकर डिब्बी में बन्द कर उसे थमा दिया कि मार्ग में यही केंकड़ा तुम्हारा सहायक होगा। माँ की आज्ञा से उस ब्राह्मण कुमार ने कपूर की डिब्बी में बन्द करके उसे अपने थैले में रख लिया और यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

मार्ग में ग्रीष्मकाल की गर्मी से व्याकुल होकर ब्राह्मण घने वृक्ष की छाया में सो गया। इसी बीच पेड़ के खोखले से एक साँप निकल कर ब्राह्मण के समीप गया और उसके पास रक्खी डिबिया को जीभ की चपलता वश खाने लगा। डिबिया में रक्खे केंकड़े ने शीघ्र ही साँप के प्राण ले लिए। ब्राह्मण पुत्र ने उठकर देखा की बड़ी पोटली के पास साँप मरा पड़ा है। उसे देखकर ब्राह्मण को निश्चय हो गया कि अवश्य यह साँप इस केंकड़े के द्वारा मार डाला गया है और प्रसन्नतापूर्वक सोचा—मेरी माता ने ठीक ही कहा था कि व्यक्ति को सदा ही कोई न कोई सहायक अवश्य ही रखना चाहिए। अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिए।